पंचम अध्याय

गिरमिटियों का आर्थिक तथा धार्मिक पक्ष

अध्याय - 5

निम्नवर्ग का धार्मिक तथा दार्शनिक पक्ष

विषय प्रवेश :-

इस लघु-शोध-प्रबंध के पंचम् एवं अंतिम अध्याय में नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित निम्नवर्ग के धार्मिक तथा दार्शनिक पक्ष का अध्ययन करना हमारा मुख्य उद्देश्य हैं। अतः यहाँ पहले निम्नवर्ग के धार्मिक पक्ष का और तदुपरान्त दार्शनिक पक्ष का स्वरूप प्रस्तुत करना है। व्यापक दृष्टि से धर्म का अर्थ है नियम - वह नियम जो मानव के हृदय तथा मन में विद्यमान है। वास्तव में धर्म श्रध्दा का विषय है। वह सामाजिक व्यवस्था का आदिम मार्ग है। भारत धर्म परायण देश है। वेद काल में धर्मात्माओं के आचरण एवं व्यक्ति के अपने अन्तःकरण को धर्म का स्त्रोत माना गया है। प्राचीन काल में हिन्दू धर्म सामाजिक संगठन तथा दैनिक जीवन का निर्देशन करता था, परिणामतः समाज में जड़ता आ गई थी तथा धर्म से मुक्त स्वतंत्र रूप में समाज दर्शन का विकास नहीं हो सका था।

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में नवीन शिक्षा और ईसाईयों के साथ सम्पर्क स्थापित होने से शिक्षित वर्ग के धार्मिक दृष्टिकोण में परिवर्तन हो गया। लेकिन धार्मिक और सामाजिक जीवन रूढ़िग्रस्त होकर उस पर पंडे-पुजारी बुरी तरह हावी हो गये थे। फिर भी राजनीतिक तथा सामाजिक चेतना के विकसित होने के कारण धर्म को सामाजिकता की कसौटी पर कसा जाने लगा। यूरोपीय वैज्ञानिकता, बुध्दिवादिता, साहस और परिश्रम से भारत में नवोत्थान का व्यापक आन्दोलन उठा। जिस से अपने धर्म की परम्परा और विश्वासों के त्याग के साथ पाश्चात्य विचारों के साथ सामंजस्य स्थापित किया जाने लगा और पुराने संस्कार भी नये और परिमार्जित रूप में प्रस्तुत होने लगे।

धर्म की परिभाषा :-

धर्म के व्यापक स्वरूप को किसी एक परिभाषा में बाँधना संभव नहीं है। अतः विभिन्न विचारकों की धर्मसंबंधी परिभाषाएँ देखना आवश्यक है।

"धर्म" शब्द संस्कृत के "धृ" धातु से व्युत्पन्न है। जिसका अर्थ है धारण करना। धर्म की शाब्दिक व्याख्या है "ध्रियते येन सधर्मः।" अतः "धर्म"" का अर्थ हुआ समाज धारणा तथा समाज-सातत्य के लिए आवश्यक सामाजिक नीति-नियमोंके प्रति निष्ठा।"[1] "आदर्श हिन्दी शब्दकोश" में "धर्म" का अर्थ दिया है - "सुकृत, सत्कर्म, पुण्य, सदाचार, वह आचरण जिससे समाज की रक्षा और कल्याण हो, सुख शांति की वृध्दि हो और परलोक में सद्‌गति प्राप्त हो, कर्तव्य, मन की वृत्ति, इन्द्रियों का कार्य, पदार्थ का गुण, विशेषता आदि।"[2] धर्म की परिभाषा करते हुए डॉ. शीलप्रभा वर्मा ने लिखा है, "आत्मा से आत्मा को देखना, आत्मा से आत्मा को जानना और आत्मा से आत्मा में स्थित होना धर्म है।"[3] धर्म की साधना और उद्‌देश्य को स्पष्ट करते हुए तर्कतीर्थ लक्ष्मणशास्त्री जोशी जी ने धर्म की व्याख्या की है, "इष्ट की प्राप्ति के लिए और अनिष्ट के निवारण के लिए अलौकिक शक्ति की, की गयी साधना या प्रार्थना ही "धर्म" कहलाती।"[4] धर्म और जीवन का संबंध मानते हुए महामहिम सर्वपल्ली डा. राधाकृष्णन लिखते है - "धर्म सम्पूर्ण जीवन की पध्दति है। वह नश्वर में अविनश्वर तथा अचिर में चिर का अनुसंधान है। धर्म जीवन का स्वभाव है।"[5] धर्म को परिभाषित करने का प्रयत्न पाश्चात्य विचारकों ने किया हैं मगर लघु-शोध प्रबन्ध की सीमा का ध्यान रखते हुए उनका यहाँ उल्लेख एवं स्पष्टीकरण असंभव है।

तात्पर्य, धर्म का समाज में असाधारण महत्व है। जिसके आचरण के कारण मनुष्य में श्रेयस्कर की ओर बढ़ने की लालसा या चाह रही है। मनुष्य के आचरण को हितकर बनाने के लिए "धर्म की सहायता तथा नियमन रहा है।" वास्तविक रुप में धर्म मानव मन में विधमान सदाचार का नियम है।

धर्म का स्वरुप :

"धर्म" शब्द में असीम व्यापकत्व है। किसी वस्तु का वस्तु तत्व ही उसका धर्म है। अग्नि का धर्म जलना है। अग्नि वस्तु से जलाने की शक्ति हटा ली जाय तो उसका वस्तुत्व ही नहीं रहेगा। धर्म वह उपकरण है जो मनुष्य और पशु में भेद करता है। धर्म के अभाव में मनुष्य पशु ही है। धर्म देश और काल के अनुरुप महापुरुषों द्वारा निर्दिष्ट जीवन की विशिष्ट प्रक्रिया है जो लौकिक एवं पारलौकिक सफलता का साधन है। आत्मा का स्वभाव तथा वस्तु का स्वरुप धर्म है। धर्म की उत्पत्ति सत्य से होती है, दया और दान से वह बढ़ता है, क्षमा में वह निवास करता है और क्रोध में उसका नाश होता है। धर्म ही समस्त विश्व का आधार, सुख एवं शांति का एकमात्र उपाय है। धर्म अविनाशी तत्व है।

संसार में किसी एक धर्म की स्थिति और सत्ता हमेशा एक-सी नहीं रही हैं। बदलती हुई सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थिति के कारण धर्म का स्वरुप भी बदलता चला जाता है। वर्ण धर्म, आश्रम धर्म, कुल-धर्म, काल एवं देश धर्म, राज धर्म, स्वधर्म आदि धर्म के अनेक रुप होते हैं। आज रामायण-महाभारत के समय का धर्म नहीं रहा। राजा राममोहन राय, दयानंद सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद जैसे विचारकों और समाज सुधारकों के कारण हिन्दु धर्म का स्वरुप बहुत-कुछ बदल गया है। राजाश्रय से किसी धर्म का उत्थान होता है या किसी का पतन। धर्म के स्वरुप के बारे में राजेश शर्मा लिखते है "धारायते इति धर्मः" इस उक्ति के अनुसार धर्म वह है, जिस में समस्त उदात्त, उदार और महान मानवीय वृत्तियों, सद्गुणों को धारण करने की अद्भुत क्षमता विद्यमान रहती है। इस दृष्टि से धर्म का कोई स्थूल एवं निर्धारित स्वरुप नहीं होता। अपने-आप में वह मात्र एक पवित्र एवं सूक्ष्म भावना है। जीवन जीने की एक आस्था और विश्वास है।"[6] वस्तुतः पूजा-पाठ, व्रत-उपवास या रोजा-नमाज जैसे बाहयाचार या कर्मकाण्ड धर्म नहीं है। सच्चा धर्म है पवित्र आचरण एवं व्यवहार का नाम। सत्य भाषण, प्राणी मात्र के प्रति प्रेम एवं अपनत्व का भाव ही सच्चा धर्म है।

भारतीय जन-जीवन का मूलाधार धर्म है। समाज में प्रचलित उत्सव-पर्व, त्यौहार-मेले आदि पर धर्म का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से प्रभाव दिखाई देता है। भारतीय जीवन के सभी प्रमुख कर्तव्य और संस्कार धर्म पर ही आधारित है। समाजिक जीवन के साथ-साथ व्यक्ति के आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन के साथ भी धर्म का गहरा सम्बन्ध है। धर्म के विरुध्द साधनों से धन कमाना पाप माना जाता है। धर्म व्यक्ति के जन्म से लेकर मृतक संस्कार तक व्यक्ति के जीवन में रहता है।

मूलतः सभी धर्मों की भावना में समता एवं एकता है और साध्य लोक-कल्याण है। अपने-अपने धर्म का निरर्थक स्वाभिमान संघर्ष की भावना पैदा करता है। इस दृष्टि से हमे रामकृष्ण परमहंसजी के विचार अत्यन्त युक्ति-युक्त एवं महत्वपूर्ण लगते है - "सब धर्म समान हैं और सभी एक ही लक्ष्य पर ले जाते हैं। अतः धर्म-धर्म के बीच में दीवार, संघर्ष, एक धर्म के मानने वालों के द्वारा दूसरे धर्म पर कीचड़ उछलना, ये सब बातें अर्थहीन है। इन से अपने धर्म की रक्षा नहीं होती, अपितु उसका पतन होता है।"[7] याने एकात्मक भाव की अध्यात्मिक जागृति ही वस्तुतः धर्म है।

धर्म के सन्दर्भ में उपर्युक्त विवेचन के बाद इतना ही कहा जाएगा कि सभी धर्म तात्विक दृष्टि से उसी एक दिव्य शक्ति या परमात्मा के पास पहुँचने का मार्ग प्रशस्त करते है। ईश्वर एक है, भिन्न-भिन्न नाम सुविधा के लिए दिए जाते हैं। वास्तव में मंदिर-मस्जिद गिरजा को लेकर या पूजा-नमाज-प्रार्थना को लेकर आपस में लड़ना विचारों की अपरिपक्वता का तथा धार्मिक अज्ञान का लक्षण है। प्रत्येक को अपने विचारों के अनुसार अपने द्वारा निश्चित मार्ग से जाने का पूरा अधिकार है।

पर धर्म सहिष्णु बनकर यदि हम अपनी जगह दूसरों को समझें तो सदियों से चले आए धार्मिक संघर्ष आसानी से मिट जाएँगे। जिस दिन यह हो जाएगा उस दिन धरती पर स्वर्ग होगा इस में संदेह नहीं है।

निम्नवर्ग के जीवन में धर्म :

भारतीय निम्नवर्ग के व्यक्तियों को तथा उनके जीवन को संचलित करनेवाले तत्वों के अन्तर्गत धर्म का महत्वपूर्ण स्थान है। विश्व मानवता के इतिहास का अवलोकन करने से यह ज्ञात होता है कि जिन व्यक्तियों का प्रकृति से जितना प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है अथवा जो अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रकृति पर निर्भर रहते हैं, उनका विधाता की परमसत्ता में अधिक विश्वास होता है। नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित निम्नवर्ग बिहार के मिथिला जन-पदों में रहनेवाला है और वह अपनी आजीविका खेती, मजदूरी तथा मछलीमारी से प्राप्त करता है। अतः प्रकारान्तर से प्रकृति पर निर्भर हैं इसलिए उसका धर्मावलम्बी होना स्वाभाविक ही है। यह निम्नवर्ग गरीब, अनपढ़ तथा परंपरागत संस्कारों से युक्त होने के कारण धर्म के बाहयाचारों में विश्वास करता है। अतः नागार्जुन के उपन्यासों के निम्नवर्ग के जीवन में धर्म संबंधी बाहयाडंबर, देवी-देवताओंकी पूजा, भूत-प्रेतों में विश्वास, पशुबलि, मनौतियाँ, मठ-मन्दिरों में चला पाखण्ड तथा साधु-महंतों के विलासी जीवन के अनेक प्रसंग मिलते हैं।

बाहयाडंबर :

नागार्जुन की मान्यता है की आज समाज में धर्म आत्मिक भावना न रहकर दिखावे की वस्तु बन गीय है। अतः धर्म के नामपर समाज में विविध आडम्बर तथा ढ़कोसलों का बोलबाला हुआ है। बाहयाचारों के इस भूलावें में देहाती भोली-भाली जनता को ठगाया जा रहा है। जिस से धार्मिक जीवन नकली और निष्प्राण बन गया है। धर्म के बाहयाचारों का चित्रण नागार्जुन के उपन्यासों में विस्तृत रुप में हुआ है। "रतिनाथ की चाची" उपन्यास में दिखाई देता है कि खेती में पहले-पहल जो अनाज, आम आदि आता है वह देवी-देवताओं को अर्पण करने की चलन है। रतिनाथ को जब एक पका आम मिला तो उसे देखते ही पिता जयनाथ कहते है - "अरे सूँघ मत लेना, भगवान को भोग लगाएँगे।"[8] गौरी से अनैतिकता का जो अपराध हो गया था, उस से उभरने के लिए पंडित उसे सिमरिया घाट जाकर प्रायश्चित्त करने का उपाय बताते है। इस में पंडित वर्ग की स्वार्थी भावना ही छिपी है। "बाबा बटेसरनाथ" में समय पर पानी न बरसने से रुपउली गाँव के निम्नजातिके लोगों का भुइँयाँ महाराज की प्रसन्नता के लिए बकरे की बलि चढ़ाना और स्त्रियों द्वारा मेंढ़क ओखली में मुसलों से कुचलकर गीतों में

बादलों को बुलाना आदि वर्णनों में बाहयाचार की झलक मिलती है। "ग्वालों, अहीरों और धानुकों ने यही चार दिनों तक भुईंयाँ महाराज का पूजन किया, दस भेंडें बलि चढ़ाई और दो जवान भाव खलते-खेलते लहूलुहान होकर गिर पड़े थे...।"[9] "दुखमोचन" उपन्यास के टमका-कोईली गाँव में लगी आग में मास्टर टेकनाथ का बैल झुलसकर मरता है तो पंडित उसे प्रायश्चित लगाते है। दुखमोचन उसे समझाता है - 'पंडितों के पुराने पचड़े में नहीं पड़ना मास्टर, वे तो पतिया-प्रायश्चित के खर्चीले खटरागों में फँसाकर तुम्हारी बधिया ही बिठा देंगे।'[10] और बैल की हत्या के पाप से उध्दार कर उसका बोझ हल्का करता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भोली-भाली,रूढ़िप्रिय जनता को पंडित-पुजारी विभिन्न प्रकार के पाप-पुण्य का भय तथा मोह दिखाकर अपनी रोजी-रोटी चलाते है। धर्म के तात्विक रूप को ठुकराकर बाहयाडंबर में ही धर्म बताकर प्रायश्चित तथा कर्मकाण्ड के द्वारा लोगों का शोषण करते आए हैं। वस्तुतः धर्म का यह वास्तव रूप न होकर ठगाई का एक जाल है, जिस में परंपराप्रिय अज्ञानी निम्नवर्ग फँसता रहता है।

देवी-देवताओं की पूजा :

नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में निम्नवर्ग में प्रचलित देवी-देवताओं की पूजा का भी सूक्ष्म तथा यथार्थ चित्रण किया है। निम्नवर्ग वृक्षों की, भुइयाँ महाराज, सहलेस, कमला नदी, सत्यनारायण तथा दुर्गा आदि देवी-देवताओं की पूजा करते दिखाई देते हैं। "बाबा बटेसरनाथ" उपन्यास में रूपउली गाँव की औरते बरगद के तने में हाथ-कते धागों के फेरे डालती हैं। ....सधवाएँ सुहाग के लिए उसे रोज फेरे डालती थी...।"[11] लोगों की यह भी धारणा है कि वनस्पतियों पर भूत-पिश्चाच, यक्ष, देव तथा ब्रह्म आदि निवास करते है। वटवृक्ष पर जब से पाठक बाबा की ध्वजा खड़ी कर दी तब से ब्रह्म का निवास वटवृक्ष पर है यह समझकर रूपउली गाँव के लोग वटवृक्ष की ही पूजा-वंदना करने लगे। बटेसर बाबा का अनुभव कथन है - "श्रध्दा, भक्ति, भय और आतंक...अब मैं प्रिय नहीं था, पूजनीय था... वंदनीय और माननीय था। सोमवार और बुधवार के प्रातःकाल स्त्रियाँ आकर मेरी वेदी पर चावल की पीठी के घोड़े खड़े करती और पिण्डियों पर दूध ढालती,अच्छत और फूल चढ़ातीं, परिवार की भलाई के लिए मन्नतें मानती....।"[12] अपने सामने ब्रह्म बाबा को प्रसन्न करने के लिए दी गई पशु-बलियों को देखकर बटेसरनाथ को हार्दिक दुःख होता है। वृक्ष पर ब्रह्म बाबा का निवास होने के कारण लोग बरगद के नीचे खड़े होने में भी हिचकते हैं। किसी का कोई मनोरथ पूरा होता था तो लोग आकर वटवृक्ष के सामने धूमधाम से मनौतियाँ भी चढ़ाते। पेड़ पूजन की यह रीति "नयी पौध" उपन्यास

में विवाह के पहले अपनायी जाती है। बिसेसरी के शादी की तैयारी हो गयी थी और "बिसेसरी को लेकर सधवा औरतें गाँव के बाहर आम और महुआ के पेड़ पुजवाने गयी थीं।"[13]

निम्नवर्ग परंपराप्रिय होने के कारण व्रत-वैकल्प करता है। उनकी धारणा होती है कि व्रत रखने से भगवान प्रसन्न होते है। व्रत के साथ-साथ यह वर्ग उपवास भी करता है। "रतिनाथ की चाची" उपन्यास की नायिका गौरी देवी-देवताओं के नाम व्रत-उपवास रखती है। गौरी की माँ कहती है - "कल मंगल है। मंगल को उपवास रखती है।"[14] "वरुण के बेटे" के मछुए कमला नदी की वंदना में गीत गाकर अपनी पूजा-अर्चा की भावना व्यक्त करते है। खुरखुन और नीरस दोनों मिलकर पूजा गीत गाते है -

"ओ कोयला-देवता,
कमला-नदी के बीचो-बीच
तैयार हो गया है बाँध।
तुमने उस बाँध पर फुलवाडी लगा दी है।"[15]

साथ ही सत्यनारायण, शंकर, राम-कृष्ण, दुर्गामाता, सहलेस तथा दीनाभद्री आदि के प्रति निम्नवर्ग के लोगों में अपार श्रध्दा होने से उसकी पूजा करते है।

निष्कर्षतः नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित निम्नवर्ग के दिल में धार्मिक भावनाओंकी अधिकता तथा संस्कारों के परिणामवश उनका देवी-देवता के प्रति अटूट विश्वास है। प्रत्येक जाति के धार्मिक विश्वास अलग-अलग होने से उनके देव-देवियाँ भी भिन्न-भिन्न है। दुसाध जातियाँ सहलेस को पूजती है तो ग्वाले, अहिर, धानुक लोग भुइँयाँ महाराज की पूजा करते है। पेड़, सागर तथा नदियाँ भी इनके पूजा स्थान रहे है। नागार्जुन का विश्वास है कि यह पूजा-अर्चा व्यर्थ के क्रिया कलाप हैं।

भूत-प्रेतों में विश्वास :

उपन्यासकार नागार्जुन का विश्वास है कि पिछड़ा हुआ जन-समाज धार्मिक अंधविश्वासों एवं पाखंडों में परम विश्वास करता है। भूत-प्रेतों में विश्वास की अभिव्यक्ति उन्होंने अपने उपन्यास "रतिनाथ की चाची", "बलचनमा", "बाबा बटेसरनाथ", और "जमनिया का बाबा" में की है। भूत-प्रेतों में विश्वास याने जन-सामान्यका अंधविश्वासों में फँसकर अपना अहित कर लेना ही है। "बलचनमा" में मुखिया को जब भूत लग जाता है, तो वह कोंचा खोलकर नंगी हो जाती और चिल्लाती रहती - "ही-ही-ही-मैं काली हूँ, पोखर पर जो बौना पीपल है उसी पर रहती हूँ, खा जाऊँगी समूचा गाँव। बकरा दो बकरा-----।"[16] तब ओझाजी दामो ठाकुर चूहे के बील की मिट्टी, पुराने बिनौले, कुश

के तिनके, गंगाजल, पीपल के सुखे पत्ते आदि चीजें मिलाकर एकांत कोठे में भूत उतारते है। सुखिया का भूत चढ़ने का यह ढ़ोंग मानसिक विकृति और अतृप्त काम भावना का ही परिणाम है। सुखिया का भूत दामो ठाकुर एकांत में ही उतारते है और वह कई दिनों के लिए स्वस्थ हो जाती है। "बलचनमा" में ही नागार्जुन स्पष्ट करते है कि प्रायः भूत या जिन्न बाँझ औरत को ही पकड़ता है इसमें काम कुंठा और अतृप्त अकांक्षा ही महत्वपूर्ण है।

भूत-प्रेत में विश्वास का चित्रण "बाबा बटेसरनाथ" उपन्यास में भी मिलता है। जद्दू के लड़के मध्दू की शादी पचपन वर्ष की आयु तक न होने से वह चिन्तित था। वह एक औघड़ बाबा को बुलाकर तंत्र-मंत्र द्वारा आप को लगा भूत उतारता है। डोम जाति का यह औघड़ बाबा काफी मशहूर था। "जहाँ कहीं भूत-प्रेत का उपद्रव उठ खड़ा होता, जहाँ कही देव-देवी उत्पात मचाते, जहाँ कहीं ब्रह्म-कर्णपिशाची-चुडैल आदि की खुराफ़तें उभरतीं, वहाँ औघड बाबा की गुहार होती।"[17] निम्नवर्ग के दिल में भूत-प्रेतों के प्रति जो विश्वास है उसका फायदा ओझा तथा औघड बाबा उठाते है। इस औघड बाबा ने भी एक बकरा और पाँच बोतल दारु पहले ही मध्दू से ले रखी थी। "रतिनाथ की चाची" में रतिनाथ के मित्र किताबें खो जाने पर चोर के लिए कटोरा चलवाना चाहते है - "भूत-प्रेत तो ले नहीं गए होंगे। अच्छा, परसौनी का जूगल कामति कटोरा चलाना जानता है। जिस साले ने हमारी किताब ली होगी, 'उस पर अगर कटोरा न चलवाया, तो----।"[18] इस से स्पष्ट होता है कि संस्कार के कारण बचपन से ही भूत-प्रेत तंत्र-मंत्र आदि पर विश्वास होता रहता है।

निष्कर्षतः हमारी राय है कि बिहार का मिथिला प्रदेश स्वातंत्र्यपूर्व काल में शैक्षिक तथा आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा होने के कारण लोगों में भूत-प्रेत, जादू-टोना तथा जंत्र-मंत्र आदि बातोंपर अधिक विश्वास था। ओझा तथा बाबा जैसे पाखण्डी लोग इस विश्वास का अपने लिए जमकर लाभ उठाते थे।

पशु बलि :

अन्धश्रध्दा तथा अज्ञान के कारण हमारे समाज में देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए प्राचीन काल से पशु बलि देने की प्रथा है। कोई शुभ कार्य करने के पहले यज्ञ आदि किये जाते हैं। पंड़ितों को दान-दक्षिणा दी जाती है। पशु बलि प्रथा भी उचित समझी गयी है। धार्मिक भावनाओं के कारण दी जानेवाली पशु बलि का चित्रण नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में किया है। ग्रामीण जन साधारण अपनी भक्ति का प्रदर्शन बकरा-बलि देकर करते हैं। शास्त्रकारों ने भी बलि के लिए बाघ और भालू का विधान नहीं किया है, उन्हें बकरे ही नजर आए हैं। धर्म के नेताओं को

मान्यता है कि विधाता ने बकरे की निर्मिती ही यज्ञ में आहुति देने के लिए की है। अतः यज्ञ के लिए की गयी हिंसा यह हिंसा नहीं मानी जाती। "बाबा बटेसरनाथ" में उपन्यासकार ने बताया है कि रुपउली गाँव में बकरे की बलि देने की प्रथा थी। इस भयावह प्रथा के बारे में बटेसरनाथ का अनुभव है कि "बारह महीनों में बीस-पच्चीस बकरे भी बलि चढ़ते थे - मचलते मुण्डों और तड़पते धड़ों की खूनी पिचकारियों से मेरा सीना सुर्ख हो उठता था, रगों में बिजली दौड़ जाती थी, क्षण-भर के लिए पत्तों का हिलना रुक जाता था।"[19] बलि देने की यह भयंकर पध्दति निश्चित रुप से लोगों के धार्मिक अज्ञान की ही झलक है। "बलचनमा" उपन्यास में छोटी मालकिन के लड़के के जनेऊ में सोलह बकरों की बलि चढ़ी थी। बलचनमा की बहन रेबनी जब ससुराल में रहने लगी तब बकरियों पर नजर रखने के लिए कोई न होने से बलचनमा ने "दो बकरे थे, सो भुइयाँ महाराज को बलि चढ़ाएँ।"[20] "नयी पौध" में बिसेसरी की शादी अगहन के लगन में होने के लिए टुनाई का परिवार दुर्गामाता को बलि देने की मनौती करते है - "पण्डिताइन ने आँचल पसार कर और मत्था टेककर जोड़ा छागर कबूला था दुर्गामाई के आगे।"[21] बलि प्रथा की चरम सीमा का उल्लेख नागार्जुन ने "जमनिया का बाबा" उपन्यास में भयावह और विद्रोहजनक मनुष्य बलि के रुप में किया है। जमनिया के मठ में महाष्टमी की रात गरीब लक्ष्मी के छः मास के बच्चे को टुकडे-टुकड़े कर अग्निकुंड के हवाले कर दिया गया। "क्वार के महीने में उस वर्ष मठ के अन्दर धूमघाम से दुर्गापूजा हुई थी। चंडी मइया को मनुष्य की बलि दी गई थी। --- बच्चे की देह को उस निठुर आदमी ने कई टुकडों में काटा। फिर वे टुकड़े एक-एक करके हवन-कुंड में डाल दिये गये।"[22] इस तरह उपन्यासकार ने अंधविश्वास के वशीभूत हो की गयी बलि की घिनौनी, अमानवीय प्रथा का चित्रण किया है।

निष्कर्ष यह कि धार्मिक अन्धविश्वास का प्रभाव सामान्य जन पर अत्याधिक होने से पशु-बलि जैसी हिंसात्मक कृतियों को धर्म ही समजते है। पशु-बलि याने धर्म रक्षकों के द्वारा धर्म की आड़ लेकर अपने स्वार्थ के लिए करवा ली भयानक हत्या है। देहाती गरीब जनता साधुबाबा, ओझाजी या औघड बाबा की चाल में फँसकर अपना ही अहित कर लेती है। नागार्जुन को ऐसी कुप्रथाओं से नफरत होने से वे इन्ही जघन्य पध्दतियों को बंद करने का संदेश देते हुए लिखते है - "मनुष्यों की बलि चाहनेवाले यक्ष-गन्धर्व, देव-देवियाँ और ब्रह्म अब बाहर नहीं रह गए- मोटी जिल्दों वाले पुराने पोथों की बारीक पंक्तियों के अन्दर आज वे नजरबंद हैं।"[23] अब ऐसी प्रथाएँ प्रयत्नपूर्वक बंद ही करनी चाहिए

SHIVAJI UNIVERSITY LIBRARY

मनौतियाँ :

नागार्जुन ने अपने उपन्यास "बाबा बटेसरनाथ", "नयी पौध", तथा "बलचनमा" में लोगोंद्वारा अपने स्वार्थ-पूर्ति के लिए की गयी मनौतियों का भी वर्णन किया है। लोग संतान, धन, यश-लाभ के लिए एवं युवतियाँ अच्छे वर की कामना से देव-देवताओं की मनौतियाँ करते हैं और मनोरथ रुपी स्वार्थी-पूर्ति होने के बाद मनौतियाँ चढ़ाते हुए दिखाई देते हैं। "बाबा बटेसरनाथ" उपन्यास में जैकिसुन के परदादा अपनी गुजराती नस्ल की बीमार भैंस ठीक होने के लिए बाबा बालेश्वरनाथ की मनौती करते है - "दुहाई बंभोलेनाथ की। अब तेरा ही एक आसरा है। जब तक गुजराती निरोग नही होगी तब तक मैं तेरे सामने से नहीं हटूँगा।।।"[24] उसका यह मनोरथ पुरा हुआ, तब से वे जीवनभर हर सोमवार को मंदिर में जाकर बालेश्वरनाथ पर जलका अभिषेक करते रहे। बटेसरनाथ मनौतियों के बारे में अपने अनुभव जैकिसुन को बाताते है - "किसी के घर कोई शुभकार्य होता तो यहाँ आकर पाठक बाबा का पूजन अवश्य कर लेता। मनोरथ पूरा होने पर लोग आकर धूमधाम से ननौतियाँ चढ़ाते। रेशम की झूलें, कोढ़िला के बने सिरमौर और मण्डप, जरी-गोटे की मालाएँ, पीतल-काँसे की घण्टियाँ, लाल-इकरंगे का टुकडा---धूप-दीप, फूल-फल, अच्छत-दूब, दूध और गंगाजल, बेल और तुलसी के पत्ते-- फर-फरहरी, मिठाइयाँ, पकवान, पान-मखान,----ढोल-ढाक--पिपही। बारह महीनों में बीस पच्चीस बकरे भी बलि चढ़ते थे।"[25]

"बलचनमा" उपन्यास का नायक बलचनमा भुइयाँ महाराज की मनौती बकरे की बलि चढ़ाकर पूरी करता है - "दो बकरे थे, सो भुइयाँ महाराज को बलि चढ़े। मनौती थी।"[26] "नयी पौध" में बिसेसरी भी अपने विवाह और अच्छे वर के लिए मनौती करती है - "आनेवाले अगहन में अगर कोई बीस या बाईस-साला दूलहा उसके लिए मिल गया और शादी हो गई तो वह चाँदी की छोटी-सी खूबसूरत बसुली गढ़वायेगी सुनार से और बाँके बिहारी कुँवर कन्हैया के हाथों में थमा देगी----।"[27] "रतिनाथ की चाची" में गौरी की माँ भी अपनी बेटी गर्भपात की मुसीबत से राजी-खुशी निकलने के लिए मनौती करती है "दोहाई बाबा वैजनाथ की। इस मुसीबत से राजी-खुशी मेरी लड़की निकल गई, तो गंगाजल भरकर मैं सुल्तानगंज से तुम्हारे धाम पहूँचूँगी।"[28] वर्तमान काल में भी मनौतियाँ मांगने और चढ़ाने की अंध श्रध्दा कायम दिखाई देती है।

तात्पर्य यह कि आपत्तियों से घिरे तथा आर्थिक संकटग्रस्त ग्रामवासी मनौतियों में अधिक विश्वास करते है। दैनंदिन जीवन में छोटे-मोटे लाभ के लिए मंदिर में जाकर मनौतियों द्वारा इच्छा पूर्ति की भावना आम जनता में प्रचलित है। इतिफाक से कोई मनोरथ पूर्ण हो जाने से प्रसन्न होकर मनौतियाँ चढ़ाते है। यही भावना निम्नवर्ग में पशु-बलि को बढ़ावा देती है।

धार्मिक विकृतियों का पोषण :-

धर्म के प्रति लोगों के दिल में जो अंधश्रध्दा है उसका पाखण्डी लोग अपने स्वार्थ के लिए पूरा फायदा उठाते हैं। साधु-महंत, पंडित-पुजारी, ओझा-औघड़ आदि धर्मभ्रष्ट लोग अनपढ़ तथा वैचारिक द्रुष्टिसे सनातनी लोगों को लूटते रहते है। इन ढोंगी धर्म रक्षकों को न तो धर्म का सही ज्ञान होता है न उनके दिल में धर्म के प्रति श्रध्दा ही। लेकिन ऐसे साधु बाबा का आदर पिछड़ी जातियों के लोग अधिक ही करते है। "जमनिया का बाबा" उपन्यास कें साधु के चेले मस्तराम का कथन है, "हमारे जैसों के लिए अनपढ़ भगत ही काम का साबित होता है। जमनिया के ईर्द-गिर्द लाखों की तादाद में गरीब और अनपढ़ लोग फैले हैं।"[29] यह नकली बाबा सिध्दि का स्वाँग रचाकर अपना उल्लू सीधा करते है। जमनिया मठ का बाबा अपने पूर्व जीवन में करीमबख्श नामका मुसलमान था। जवानी के दिनों में गंभीर अपराध के कारण पुलिस की निगाह से बचने के लिए नेपाल भाग गया था। वही आज साधु बाबा बनकर भोली-भाली हिन्दू जनता को धोका दे रहा है। "रतिनाथ की चाची" उपन्यास के भोला पंडित दुनियादारी और जगदंबा की स्तूती, इहलोक और परलोक दोनों साथ चलाते थे। एक-एक ब्याह में पचास-पचास रुपये लेते थे। तारा बाबा का कहना है," भोला पंडित ब्रहमपिशाच होगा। पचीसों लड़कियाँ जिस के नाम पर रात-दिन आँसू बहाएँ, उसका भला कैसे होगा?"[30] किसान - मजदूर पंडित-पूजारी को दान-दक्षिणा देते है। "बाबा बटेसरनाथ" के बुध्दन राउत तर्क पंचानन की सलाह और आशिर्वाद के बदले में दक्षिणा देता है, "गाढ़ी धोतियों का पीला जोडा लेता आया--- दोनों धोतियाँ महापण्डित के चरणों में निवेदित करके वह एक ओर खडा रहा।" शुभा-शुभ मूहर्त तथा शकुन-अपशकुन आदि मानसिक कमजोरियों पर निम्नवर्ग के लोगोंका विश्वास होने से उसका पालन करने की कोशिश करते है।

जमनिया-मठ में शिवनगर की रानी साहिबा वर्ष में दो बार साधुओं को भंडारा देती थीं। अशिक्षित तथा पढ़े लिखे लोग, निपूत्रिक औरतें,अविवाहितयुवतियाँ स्वेच्छा जमनिया मठ जाकर आशीर्वादी बेंत की फटकार अपने पीठ पर लगवा लेते थें। "इन में पढ़े-लिखे लोग भी है। जेल के दप्तर में काम करने वाले वे दोनों बाबू पढ़े-लिखे हैं। एक तो बी.ए. तक की विद्या हासिल कर चुका है, दुसरा इंटर तक पढा है। एक ब्राहमण है, दूसरा राजपूत।"[31] इन उदाहरणों से पता चलता है कि लोग स्वयं ही प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रुप में धार्मिक विकृतियों को वृध्दिगंत होने में सहायता करते है। यदि सामान्य जनता सयानी होकर साधु बाबाओं का पोल खोलेगी तो ऐसी विकृतियाँ नहीं पनप सकेगी, 'बाबा क्या है, भगत लोग अपना हाथ खीच ले तो चुटकी, भर पिसान दुर्लभ हो जाय। भगतों की बदौलत ही बाबा गुलछर्रे उडाता है।"[32]

तात्पर्य यह कि सामान्य जनों की अंधश्रध्दा के कारण ही धार्मिक विकृतियों को बढ़ावा मिलता है। निम्नवर्ग के लोग यदि पढ़ना-लिखना जानकर आर्थिक दृष्टिसे समृध्द होंगे, सुख-सुविधा के सामान आसानीसे हासिल कर लेंगे तो निश्चय ही वे ऐसी धार्मिक विकृतियों के शिकार नहीं होंगे। फिर साधुओं की विष्ठा को चंदन नहीं मानेंगे। समाज में व्याप्त विकृत विचारोंका कूडा साफ होने से ही धार्मिक विकृतियाँ दूर होगी।

धर्म के आदर्श विश्वासों का पालन :-

नागार्जुन को धार्मिक अंधविश्वासों से बडी नफरत है। इन में अटककर सामान्य भारतीय जनता किस प्रकार अपना अहित कर रही है, इसका वास्तव चित्रण उन्होंने किया है। साथ ही उनके "रतिनाथ की चाची" और "दुखमोचन" उपन्यास में धर्म के आदर्श आचरण का भी उल्लेख मिलता है। "दुखमोचन" में दुखमोचन मास्टर टेकनाथ को बैल की हत्या के पाप से मुक्त होने के लिए प्रायश्चित न करने की सलाह देकर उसका बोझ हलका करता है। फिर भी दुखमोचन ग्रामीण लोगों के धार्मिक विश्वास को आघात पहुँचाना भी नहीं चाहता। वह स्वयं भी धार्मिक वृति का है। वह सत्यनारायण की कथा का आयोजन कर टेकनाथ के हाथ से सबको प्रसाद और पान दिलवाता है। "रतिनाथ की चाची" की नायिका गौरी भी धार्मिक कार्यों में रुचि लेती है। कोई भी उसके द्वार से भूखा नहीं लौटता है- "गाँव में भूला-भटका कोई आ जाता है, तो लोग उसे इस टोले में भेज देते हैं कि उमानाथ की माँ दो मुठ्ठी भात और कलछी-भर दाल तो आगन्तुक को खिला ही देंगी।"[33] धर्म के इस आचरण में निश्चय ही मानव जाति का हित है, अतः ऐसे आचरण का अनुकरण आवश्यक है।

निष्कर्ष यह कि धर्म का सच्चा स्वरुप जानकर जन-कल्याण के लिए हितकारक कार्यों को स्वीकार करना ही सच्चा धर्म है। धर्म का प्रयोजन ही व्यक्ति तथा समाज का नियमन और हित है, अतः सामाजिक उपोदयता की कसौटी पर कसकर ही धार्मिक विधियोंका अवलंब हो।

मंदिरों में अनाचार मठों में व्यभिचार :-

प्रायः मंदिरों तथा मठों का निर्माण इसलिए होता है कि सांसारिकता में उलझे हुए लोगों को आत्मिक शांति मिल सके और कुछ समय के लिए ही सही, व्यक्ति संसार के छल-प्रपंचों को भूल सके। मंदिरों-मठों के व्यवस्थापन के लिए सांसारिकता से परे अलौकिक शक्ति से जुड़े साधकों को पुजारी तथा मठाधिपति के रुप में नियुक्त किया जाता है। वे प्रायः भगवान की भक्ति में तथा अध्यात्मिक चिन्तन में लीन रहकर भक्तों का कल्याण सोचते थे। किन्तु बदलते युग के साथ पुजारियों तथा मठाधिपतियों की प्रवृतियों में बदल होकर नैतिकता के यह ठेकेदार स्वयं अनैतिकता के

बीज बोने लगे है।अतः मठ - मन्दिर व्यभिचार तथा भ्रष्टाचार के अड्डे बने हैं।

नागार्जुन ने हिन्दू मठों और महंतों को अपने निशाने में लेते हुए "जमानिया का बाबा" जैसा उपन्यास लिखा है। धर्म-प्रेमी भक्तों के ढोंग-ढ़कोसलोंपर प्रहार करते हुए उन्होंने मूल धार्मिक भावना की मानवीय संवेदना को आदर और श्रध्दा से देखा है। जमनिया मठ के बारे में अखबारी कतरनों का हवाला देते हुए वे लिखते है, " असम्भव चमत्कारों का जाल बिछाकर दूर-दूर तक के लोगों को फँसा जाता है - पिछ्ड़ी जातियों की बहुएँ और बेटियाँ गुंडों की वासना का शिकार बनाकर छोड़ दी जाती है...जमनिया का मठ भारतमाता की पीठ पर पक्षाघात का जहरिला फोड़ा है।"[34] यह मठ ज्ञान-तप साधना की पवित्र जगह न रहकर भोग-लालसा तृप्ति की सुविधा बन गये है। साधुओं की वासनावृत्ति का यह वर्णन देखिए - "लक्ष्मी नहीं रही। गौरी चली गई। तो फिर इमरितिया ही क्यों रहेगी? इमरितिया जायेगी तो जलेबिया नहीं आ जाएगी? एक-आध सधुआइन न रहे तो मठ उदास लगता है, भगतों की तबीयत उचटी-उचटी-सी रहती है -"[35] जा निश्चित रूप से मठों की अनैतिकता और व्यभिचार की ओर संकेत करता है। इस मठ में रहनेवाली बाबा की शिष्याएँ पैसों वाले लोगों को अपने चंगुल में फँसाकर लूटती रहती है। जमनिया के मठ की एक शिष्या गौरी छिनाल ही है, जो "काशी, मथुरा, प्रयाग, हरिद्वार घुमती रहती थी। लौटने पर अकसर गौरी अपने साथ किसी-न-किसी मालदार आदमी को बाबा तक ले आती।"[36] मठ के अधिष्ठाता भगौति अपनी काली करतुतों से बचने के लिए गौरी को भरतपुरा के थानेदार की सेवा में ले चलता है। अनैतिकता और व्यभिचार मानो जमनिया मठ की दैनंदिनी एवं अभिन्न कार्य बन गया है।

जमनिया-मठ में पाखण्डी साधु भाँग की आड़ में शराब पीते है। गांजा, अफीम तथा विदेशी चिजों की तस्करी जैसा अवैध कार्य भी करते है - "जमनिया का मठ तस्कर व्यापार का छोटा-मोटा अड्डा नहीं है क्या? घड़ियाँ, फाउन्टेनपेन, ट्रांजिस्टर, टेपरिकार्डर... टार्च, लाइटर, कैमरे और जाने क्या-क्या वस्तुएँ मठ की भगत-मंडली के लिए सुलभ नहीं है क्या?"[37] मठ अब बदमाशों के अड्डे बन गये हैं - "जमनिया-मठ क्या है? बदमाशों का अड्डा है। काशी हिन्दुओं का सबसे बड़ा और पवित्र तीर्थ-स्थान माना जाता है। हिन्दू धर्म और भारतीय लोगों के सारे गुण और अवगुण काशी में विश्वनाथ की चरणों में अर्पित होते है, लेकिन वह पावित्र्य आज नहीं बचा है।

निष्कर्षतः नागार्जुन के उपन्यासों में अंकित मठ एवं मंदिर जैसे धर्म केन्द्र अनैतिकता और भ्रष्टाचार के अड्डे है। वे धर्म पर विश्वास रखनेवाली भोली-भाली जनता को लूटने तथा चूसने के अंधःकूप बन गये हैं। मठों में धार्मिक भावनाओं की पुनीतता एवं पवित्रता नहीं रही है। धर्म की आड़ में पण्डा-पुरोहित, साधु-महंत मठों-मन्दिरों के जरिए अपनी वासना तृप्ति और आर्थिक लाभ जुटाते है।

साधु-महंतों के पाखण्ड तथा विलास :-

परंपरा प्रिय भारतीय समाज में पुरोहितों, साधु-महंतों का एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इनका जीवन लक्ष्य लोगों को मोक्ष प्राप्ति का मार्गदर्शन और सहायता करना होता है। लेकिन आज यह वर्ग अपने पवित्र लक्ष्य से च्यूत होकर अपने विलास के लिए धार्मिक पाखंडों द्वारा निम्नवर्ग का शोषण करता है। नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित साधुबाबा एवं मठों के महंत अपने विलास के लिए जन-साधारण पर अनन्वित जुल्म करते हैं, मंत्र-तंत्र और टोने-टोटके में निम्नवर्गीय निरीह जनता को ठगाते-फँसाते है। "जमनिया का बाबा" उपन्यास के "बाबा" और उनके चेले गरीब-अंधविश्वासी भक्तों को आशीर्वाद के रूप में बेंत की कसकर फटकारें लगाते है, विवश स्त्रियों का सतीत्व-भंग करते हैं, भ्रष्टाचार-तस्करी जैसे अवैध एवं राष्ट्र विरोधी कार्य-कलापों में शामिल होते है। भगौती, लालता, रामजनम और सुखदेव आदि चेलों को तंत्र-मंत्र आता था। "ठूंठ की कोख से पौधा पैदा करने की विद्या, पत्थर पर दूब जमाने की हिकमत उन्हें मालूम थी।" बाबा सहित यह लोग युवतियों तथा निपूत्रिक स्त्रियों के भूत-प्रेत उतारने की आड़ में उनका शील-भंग करते है। यह साधु लोग बिना चेलिनों के नहीं रह सकते, इमरतिया मठाधिश बाबा की चेलिन है। "एक-आध सधुआइन न रहे तो मठ उदास लगता है, भगतों की तबीयत उचटी-उचटी-सी रहती है।"[38] धर्म के नाम पर व्यभिचार करना और अनपढ़ लोगों को ठगाना ही इन साधु-महंतों का कार्य बन गया है।

जमनिया-मठ का मठाधीश बड़ा आडम्बरी और छली-प्रपंची है। उसने पिछड़े हुए हिन्दू-जाति की अंधःश्रध्दा को पहचानकर उसका अनुचित लाभ उठाया है। उसके द्वारा विकसित जमनिया का मठ तस्कर व्यापार, अबोध शिशु बलि जैसे जघन्य कृत्य एवं व्यभिचार, देशद्रोह आदि कारनामों का अड्डा बना हुआ है। इसलिए वह पुलिस की गिरफ्त में फँस गया। लेकिन जेल में भी उसने बड़े जमादार की पतोहू के सीने की झाड़-फूँक शुरू कर दी है। "रतिनाथ की चाची" में तारा बाबा नामक एक साधु है। जयनाथ जब यन्त्र बनाने के लिए उनके पास जाता है तब बाबा कहते है - "भगवती त्रिपूर सुंदरी का एक पंचमाक्षर मंत्र है, वह अवांछित गर्भ गिराने में अनुपम है।"[39] यह साधुओं द्वारा धर्म के विकृत तथा घिनौने प्रयोग का संकेत ही है।

नागार्जुन के "अभिनंदन" उपन्यास में महंत सीताशरण दास का उल्लेख हुआ है। "उन्होंने गुरूभाई को "मिठाई" खिलाकर वैकुण्ठलोक पहुँचा दिया, फिर रोते हुए गद्दी पर बैठे। 1942 में अंग्रेजों की मदद की और आन्दोलन वालों की भी। आधा दर्जन भगतिनों के उध्दारक।.... किसानों और खेतिहरों के पक्ष में जो भी दो बात बोला, महन्तजी ने उसकी मरम्मत करवा दी। विरोधी दल के एक विधायक अपनी कटी बाँह के चलते आज भी लोगों को महन्तजी की याद दिलाते हैं।... गांजा

नहीं पीते है, लेकिन उनकी गंध अप्रिय नहीं है।"[40] इस वर्णन से पता चलता है कि महंत सीताशरण दास एक निर्दय और कठोर राजकीय महंत है। कपट नीति से अनेक पदों को प्राप्त कर विलास में रहते है।

निष्कर्ष :

नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में बाहयाडंबरो एवं रुढियों से ग्रस्त बिहार के ग्रामीण लोगों का सहज एवं विश्वसनीय चित्र साकार किया है। साधु-महन्तों के जीवन की विकृतियों और धर्म के नाम पर समाज में व्याप्त अनाचारों और भ्रष्टाचारों का रहस्य पाठकों के समक्ष यथार्थ के धरातल पर खोल दिया है। साथ ही यह स्पष्ट संकेत किया है कि ये साधु महंत ईश्वर प्राप्ति के मार्ग में साधक नहीं बाधक है। इनमें किसी प्रकारकी धार्मिक पवित्रता नहीं है। धर्म की आड़ में ये अपनी वासना तृप्ति करते, और आर्थिक लाभ सिध्द करते है। भोले-भाले निम्नवर्गीय नर-नारी को ठगाने के नये-नये हथकण्डे इनके पास है। और यह देहाती लोग अज्ञान और गरीबी के कारण इस धार्मिक तथा आर्थिक शोषण को चुप-चाप सहन करते है। नागार्जुन की राय है कि आज के युग में धार्मिक पाखंड फैलानेवाले धूर्त साधुओं की समाज को आवश्यकता नहीं। समाज को जरुरत है अभयानंद जैसे आदर्श साधु की जो राष्ट्र-रक्षक तैयार करने का कार्य करते हैं। नागार्जुन सामाजिक-धार्मिक भटकाव के प्रति नयी पीढ़ी को सजग करते हुए सही रास्ते की पीठ थपथपाते है और धर्म के आदर्श रुप को पहचानने की अभिलाषा व्यक्त करते है।

निम्नवर्ग का दार्शनिक पक्ष :

विषय प्रवेश :

प्रस्तुत लघु-शोध-प्रबंध के इस अन्तिम अध्याय के अन्तिम भाग में हमारा प्रमुख उद्देश्य नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित निम्नवर्ग के दार्शनिक पक्ष का अध्ययन करना है। यहाँ, यह देखना हैं कि निम्नवर्ग का जीवन दर्शन क्या है? प्रमुख विषय की व्याख्या एवं अन्वेषण करने से पूर्व उन मूल तत्वों का अध्ययन करना भी आवश्यक है जो इस अध्याय की आधारशिला की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

दर्शन की व्याख्या एवं स्वरुप :

"दर्शन" शब्द "दृश्य" (देखना) धातु से करण अर्थ में "ल्युट" प्रत्यय लगाकर बना है। "दर्शन" शब्द उस शास्त्र से संबंधित हैं जिसमे आत्मा, परमात्मा, स्वर्ग-नरक, मानव-जीवन, ब्रह्म, जीव, मोक्ष, धर्म, प्रकृति, पुरुष, जगत्, उद्देश्य इत्यादि दार्शनिक तत्वों का विवेचन होता है।"[41] अंग्रजी में

दर्शन के लिए "फिलासफी" शब्द प्रयुक्त होता है। "फलेइन" (Philein) अर्थात् "प्रेम" और "सोफिया" (Sophia) अर्थात् "ज्ञान"। इस प्रकार "फिलासफी" का अर्थ हुआ बुध्दिमत्ता अथवा वस्तुओं के व्यवहारिक अथवा सैन्धान्तिक कारणों के ज्ञान के प्रति प्रेम अथवा उनका अध्ययन तथा उनकी खोज।"[42] "दर्शन जगत और जीवन की बौध्दिक व्याख्या है। चिरंतन सत्य की खोज इसका ध्येय है।"[43] दर्शन की व्याख्या करते वक्त "दिनकरजी" लिखते है कि "हम दर्शन उस विधा को कहते हैं जो सोचकर नहीं देखकर लिखी गई थी। हमारे सभी दर्शनों का मूल उपनिषद-साहित्य, ऋषियों को देखकर लिखने का ही परिणाम है।"[44]

जीवन और जगत के सम्बन्ध में मनुष्य के मन में विविध प्रकार के प्रश्न उठते हैं। उन्हें सुलझाने का प्रयास ही दर्शन को जन्म देता है। अनादि काल से इस पर विचार होता आ रहा है। दार्शनिक चेतना के उत्स हमारे यहाँ वेद माने गये हैं तथा वैदिक जीवन-दर्शन को ही प्राचीनतम जीवन-दर्शन स्वीकार किया गया है। आगे चलकर उपनिषदों में सूक्ष्म दार्शनिक चिन्तन व्यक्त हुआ है। वेदों में आत्मा-परमात्मा,पुर्नःजन्म और कर्म, फलवाद के विषय में जो कल्पना की गई थी, उन्हीं का विस्तृत विवेचन उपनिषदों में किया गया। आगे चलकर उपनिषदों की परंपरा में "गीता" का निर्माण हुआ,जिस में कर्म की प्रधानता व्यक्त की गई। गीता के इस महत्व के सम्बन्ध में डॉ. रमेश तिवारी लिखते है, "गीता" के चरित्र नायक कृष्ण का महत्व इस दृष्टि से सर्वाधिक है कि उन्होंने ज्ञान, भक्ति तथा कर्म इन तीनों का समन्वय तथा समस्त दार्शनिक विवादों को समाप्त करके एक नवीन दर्शन की स्थापना की, जो अपेक्षाकृत अधिक पूर्ण तथा व्यापक था। इस दृष्टि से गीता वह प्राचीनतम ग्रन्थ है जिसमें भारत की वैदिक और प्राग्वैदिक धाराएँ, निगम और आगम एक स्थल पर मिल जाती है।"[45]

इस प्रकार भारतीय दर्शन के इतिहास में गीता ने ही पहली बार पूर्ण तथा सार्थक दर्शन प्रस्तुत किया जो हमारे जीवन-दर्शन का धरोहर बन सका।

दर्शन और जीवन दर्शन :

"दर्शन" शब्द को जब "जीवन" शब्द के साथ जोड़ दिया जाता है तब वह अंग्रेजी शब्द "फिलासाफी ऑफ लाइफ" का पर्याय "जीवन-दर्शन" बन जाता है। इस प्रयोग में "दर्शन" शब्द का अर्थ सीमित हो जाता है, क्योंकि जहाँ दर्शन तत्वज्ञान करानेवाला शास्त्र होता है, वहाँ जीवन-दर्शन केवल एक दृष्टिकोण होता है और वह भी जीवन के सम्बन्ध में। उकसा आत्मा,अनात्मा, जीव, ब्रह्म, प्रकृति, पुरुष, धर्म, मोक्ष, मानव जीवन के उद्देश्य आदि से कोई सम्बन्ध रहता ही नहीं, यदि रहता है तो केवल उपरी तौर पर। दर्शन और जीवन दर्शन का आंतर स्पष्ट करते हुए डा. आदर्श सक्सेना ने

लिखा है - 'दर्शन खोज पर आधारित होता है और जीवन दर्शन कार्यों के परिणामों पर। ----- दर्शन के सत्य प्रामाणिक एवं स्थायी सत्य होते हैं, जीवन दर्शन के सत्य प्रामाणिक एवं स्थायी हो यह आवश्यक नहीं है।'[46] डॉ. सुमित्रा त्यागी के विचार से -'भिन्न कलाकृतियों, कालों एवं स्थलों पर कलाकार का जीवन-दर्शन भिन्न होता है, परन्तु दर्शन मूलतः सभी देशों, कालों एवं स्थानों में समान होता है, मानवजीवन से तादात्म्य रखने के कारण कलाकार का जीवन-दर्शन स्वतः उसकी कला में समाविष्ट हो जाता है।'[47]

निष्कषर्तः हमारा विचार है कि जीवन-दर्शन कलाकार द्वारा जीवन की आलोचना होती है। इस सन्दर्भ में जीवन दर्शन का दर्शन शास्त्र से कोई संबंध नहीं रह जाता क्योंकि दर्शन शास्त्र जीवन की गहराई में प्रवेश करता हैं और जीवन दर्शन सतह देखकर परखता है। एक की दृष्टि आत्मा पर होती है, दूसरे की शरीर पर। व्यक्ति जीवन को जिस प्रकार समझता है उसके प्रति राग या विराग रखता है यही उसका जीवन-दर्शन है। जीवन दर्शन के लिए दर्शक में किसी विशेष योग्यता अथवा अंतर्दृष्टि की आवश्यकता हो ऐसी बात नहीं। परन्तु जितनी ही योग्यता अधिक होगी और अंतर्दृष्टि पैनी होगी उतना ही जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण अधिक सत्य होगा। इसके विपरित दार्शनिक के लिए व्यापक अनुभव, गहन अध्ययन, विकसित तर्क-बुध्दि, पैनी दृष्टि, गहरी लगन एवं लम्बी साधना आवश्यक होती है।

उपन्यास में जीवन दर्शन की अभिव्यक्ति :

उपन्यासकार के व्यक्तित्व से उसके जीवन-दर्शन का गहरा सम्बन्ध होता है। बिना किसी उद्देश्य से सहज रुप में जीवन दर्शन की अभिव्यक्ति करनेवाला उपन्यास कलात्मक माना जाता है और सौद्देश्य अभिव्यक्ति करनेवाला केवल प्रचार का साहित्य बनता है। उपन्यास में जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति कई प्रकार से होती हैं। इस विषय में डा. आदर्श सक्सेना की राय है - 'जीवन-दर्शन की उपन्यास में अभिव्यक्ति की दो पध्दतियाँ हैं, प्रथम "गौण", द्वितीय "स्पष्ट"। इन्हीं को नाटकीय एवं विश्लेषणात्मक पध्दतियाँ भी कही जाती है।'[48] कभी-कभी तो उपन्यासकार स्पष्ट रुप से स्व-कथनों तथा व्याख्या द्वारा अपनी विचारधारा को स्पष्ट करता है। वह अपनी कथा के प्रवाह का स्पष्टीकरण तथा पात्रों के कार्यों एवं आचरणों की आलोचना और उस से उद्घाटित होने वाले नैतिक प्रश्नों की व्याख्या भी करता जाता है। परिणाम स्वरुप अपने द्वारा निर्मित कृत्रिम विश्व का यह विधाता एवं व्याख्याकार बन जाता है।

भारतीय विचार धाराएँ :

भारतीय जीवन-दर्शन प्रारंभ से ही **"सत्यं शिवं सुंदरम्"** के आशावादी एवं मानवतावादी दृष्टिकोण से संचलित रहा है। आधुनिक युग चिन्तन की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। आधुनिक काल में युध्दों की विभीषिका, जन-आन्दोलनों का बाहुल्य, आर्थिक विषमता, निर्धनता एवं निम्नवर्ग की दुर्दशा, धार्मिक, सामाजिक और नैतिक रुढ़िवादिता के बंधनों में ग्रस्त मानव जीवन ने विभिन्न भारतीय विचारकों को जीवन की परख तथा चिंतन करने के लिए विवश किया। जीवन के अध्यात्मिक रुप के साथ ही उसका भौतिक रुप भी विद्वानों के चिन्तन का विषय बना।

आधुनिक भारतीय विचारकों में योगी अरविंद ने जीवन में योग-कर्म की महत्ता बतायी, स्वामी दयानंद ने आर्य समाज की स्थापना की, रामकृष्ण परमहंस ने सर्व धर्म समभाव का संदेश दिया तो उनके शिष्य स्वामी विवेकांनद ने रामकृष्ण मिशन द्वारा अद्वैतवाद का प्रचार किया, राष्ट्रपिता महात्मा गांधीजी ने सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह का महामंत्र दिया तो श्री विनोबा भावे ने नैतिकता पर बल दिया। उपर्युक्त सभी भारतीय विचारकों की विचारधाराएँ मानवतावादी दृष्टिकोण से संचलित है। जन कल्याण के सभी विचार मानवतावादी दृष्टिकोण के सहयोगी है। समन्वयात्मक दृष्टि, सर्वधर्म समन्वय, आंतर राष्ट्रीय दृष्टिकोण, सर्वोदय की भावना, आशावाद आदि सभी विचारधाराएँ, संपूर्ण मानवताके उत्थान से सम्बन्धित होने के कारण मानवतावादी जीवन दर्शन से अनुप्रणित है।

पाश्चात्य विचार धाराएँ :

आधुनिक भारतीय साहित्य विभिन्न पाश्चात्य विचारधाराओं से भी प्रभावित हुआ है। इन विचारकों और विचारधाराओं में मार्क्सका समाजवादी दृष्टिकोण, फ्रायड, एडलर, युंग आदि के मनोवैज्ञानिक सिध्दान्त, रुसों द्वारा प्रतिपादित व्यक्तिवादी जीवन दर्शन और यास्पर्स, सात्रे, एडगर आदि द्वारा प्रयुक्त अस्तित्ववादी जीवन दर्शन आदि का प्रमुख स्थान है। इन विचारधाराओं का प्रभाव वास्वत जीवन की अपेक्षा उपन्यास साहित्य के अन्तर्गत अधिक विस्तार से हुआ है।

निम्नवर्ग का दार्शनिक पक्ष :

निम्नवर्ग के दार्शनिक पक्ष में निम्नवर्गीय लोगों के जीवन की गतिविधियों, मानसिक संघर्षो, संगठनों, प्रगतियों, समाजिक-आर्थिक-सांस्कृतिक-धार्मिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों से निःसृत दृष्टिकोण का विशेष महत्व है। नागार्जुन मूलतः आंचलिक उपन्यासकार है। जिस परिवेश में नागार्जुन पले-पोसे एवं उन्होंने अपने जीवन में प्रतिकूलता के साथ संघर्ष करते हुए जो देखा, परखा एवं

भोगा उसकी प्रतिक्रिया स्वरुप ही उनका जीवन-दर्शन स्थिर हो गया है। उनके उपन्यासों का प्रतिपाद्य मिथिला जनपद का अभावग्रस्त, समाज से उपेक्षित तथा शोषण से त्रस्त हीन-दीन ग्रामीण वर्ग है। उनके प्रति नागार्जुन के दिल में सहज एवं आत्मिक सहानुभूति तथा संवेदना होने से निम्नवर्ग की प्रगति का तथा सामाजिक समता का दर्शन ही उनके उपन्यासों में व्यक्त हुआ है।

मार्क्सवादी दृष्टिकोण :

मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवादी, प्रगतिवादी, साम्यवादी एवं समाजवादी चिंतन के प्रभाव स्वरुप हिन्दी में बहुत से उपन्यास रचे गये हैं जिसे प्रगतिवादी साहित्य से पहचाना जाता है। मार्क्सवादी चिन्तन आर्थिक विषमता को ही विश्व की लगभग सभी समस्याओंका मूल समझता है। मार्क्स ने व्यक्ति के स्थान पर समाज की प्रतिष्ठा स्थापित की है। समाज से मार्क्स का तात्पर्य है कि प्रत्येक को अपने विकास और उन्नति के लिए समान अवसर हो और शासन व्यवस्था में भाग लेकर आत्मनिर्णय का समान अधिकार हो। मार्क्सवाद के यह विचार नागार्जुन के उपन्यासों में भी दिखाई देते हैं। देश की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिकऔर धार्मिक स्थितियों और जन-मानस की बदलती हुओ आस्था तथा पीड़ितों के शोषण को रोकने में कॉंग्रेस की असमर्थता ने नागार्जुन को मार्क्सवाद की ओर झुका दिया। इस समय देश में सबसे पीड़ित वर्ग यदि कोई था तो किसान-मजदूर ही। इसलिए नागार्जुन सबसे पहले अपने को उनका समर्थक मानते है। कारण नागार्जुन स्वयं भी निर्धन परिवार में जनमें थे। लेकिन नागार्जुन का मार्क्सवाद विदेशी अनुकरण मात्र न होकर वह राष्ट्रीय और सांस्कृतिक परम्पराओं की गोद में बैठा हुआ मिलता है। उनका प्रगतिवाद सब से पहले व्यापक अर्थों में मानवीय है, फिर राष्ट्रीय।

नागार्जुन मार्क्सवादी होने से उनके उपन्यासों में शोषित समाज की पीड़ा और वर्ग संघर्ष पूरे आवेग के साथ उभरकर आया है। नागार्जुन के "बलचनमा" उपन्यास में केवल सैन्धान्तिक मार्क्सवाद नहीं तो लेखक का प्रत्यक्ष समाज विषमता का बोध भी है। देहाती जीवन का उनको गहरा अनुभव है तथा उनसे उनका घनिष्ठ संबंध है। मार्क्सवाद का नागार्जुन पर प्रभाव अवश्य है पर वे शुध्द रुप से मार्क्सवादी है, हम इसे स्वीकार नहीं कर सकते।

साम्राज्यवाद का विरोध :

नागार्जुन का विश्वास पूँजीवादी व्यवस्था में नहीं, समाजवादी व्यवस्था में है। उन्होंने सदा ही साम्राज्यवादी शक्तियों का और उससे समझौता करनेवाली कांग्रेसी सरकार का विरोध किया है और समाजवादी अर्थ-व्यवस्था में पूर्ण आस्था प्रगट की है। वे साम्राज्यवाद का और उसके पिट्ठू सामंत-जमींदार वर्ग का विरोध करते हैं। उनका दृढ़ विश्वास है कि जब समाजवाद आ जायेगा, तब

"दरभंगा के महाराज हों चाहे पटना के लाट साहब-मुफत का खाना किसी को नहीं मिलेगा--- सब काम करेगा, सब दाम पावेगा---- पैसे के बल पर कोई किसी को बँधुआ गुलाम नहीं बना सकेगा।---जिसका हर-फ़ार, उसकी धरती। जिसकी हुनर और जिसका हाथ, उसी का कल-कारखाना।"[49] नागार्जुन जानते हैं कि साम्राज्यवादियों को भगाकर यह काम "सोशलिस्ट पार्टी" करेगी। इसीलिए "बाबा बटेसरनाथ" उपन्यास का जैकिसुन कहता है "खुल्लम खुल्ला सोशलिस्टों को वोट देना चाहिए।"[50] जीवनाथ के पिता दयानाथ अपने बेटे को कॉंग्रेस छोड़ने को कहते है और स्वयं किसान सभा के नेताओं से जाकर मिलते है। "अभिनंदन" के बाबू देवनन्दन प्रसाद (ललनजी) पहले कांग्रेसी थे, लेकिन "1934 में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टीकी स्थापना हुई तो ललनजी उसके उत्साही मेम्बर थे।"[51]

"नयी पौध" का वाचस्पति झा पक्का सोशलिस्ट बन गया था, तभी तो वह मानता है कि "व्यक्ति का संकट ही समाज का संकट है और समाज का संकट समूचे देश का संकट है।"[52] "पारो" उपन्यास के लाल भैया के सामने ब्रिटिश साम्राज्यवाद से देश आज़ाद करने की समस्या थी।

नागार्जुन साम्राज्यवाद का तीव्र विरोध ही नहीं करते वरन् इस से मुक्ति के लिए संघर्ष भी करते है। द्वितीय महायुध्द के समय हिटलर के रुस पर आक्रमण से रतिनाथ की चाची को खेद होता है। रुस के हारने-जितने के बारे में चाची की राय है, "मैं पढ़ी लिखी नहीं हूँ, मगर इतना समझती हूँ कि पचीस साल से रुस वालोंने अपने यहाँ जो नया संसार बसाया है उसके अन्दर जाकर राक्षसों की बड़ी से बड़ी फौज भी मात खा जाएगी।"[53] स्पष्ट है कि समाजवादी व्यवस्था ही एकमात्र व्यवस्था है जो पूँजीवादी व्यवस्था को पराजित कर सकती है। सामन्तशाही में विकास योजनाओं का फायदा उच्च वर्ग के लोग ही उठाते है। बटेश्वरनाथ कहते है,- "ऊंची जातवालों का आपसी पक्षपात और 'शुभ-लाभ' के लिए उनकी आपाधापी जब तक मौजूद रहेगी तब तक मानव-समाज की सामूहिक प्रगति नहीं होगी।"[54] इसलिए ही बलचनमा के अनुसार सेठों, जमीदारों, राजाओं-महाराजाओं से जमीन-जायदाद और धन-संपदा छीनकर लोगों में बांटना चाहिए। अतः बलचनमा का गांव "अंग्रेजी राज---नाश हो। जमींदारी प्रथा --- नाश हो" आदि नारों से गूंज उठता है।

निष्कर्षतः निम्नवर्ग की दुरावस्था का कारण साम्राज्यवाद की पूँजी प्रथा तथा शोषण नीति है। धन का अमर्याद संग्रह बंद और शोषण का -हास हुए बिना सामान्य जनता का जीवन सुकर नहीं हो सकता। अतः नागार्जुन के उपन्यासों में साम्राज्यवाद का विरोध व्यक्त होकर उसके -हास का संगठित प्रयत्न दृष्टिगोचर होता है।

गांधीवाद में अनास्था कांग्रेस से नफरत :

गांधी दर्शन व्यक्ति तथा समाज के हित का दर्शन है। जिसके प्रथम प्रयोग कर्ता स्वयं गांधीजी थे। यह दर्शन सत्य और अहिंसा में आश्रित है। अहिंसा की नींव पर एक सुन्दर समाज की स्थापना करना गांधीजी का लक्ष्य था। जिस रुप में गांधीजी समाज की स्थापना करना चाहते थे उसके बारे में डा. अरविन्द जोशी लिखते है - "वे (गांधीजी) एक ऐसा समाज चाहते थे, जिसमें स्त्री-पुरुष को समान अधिकार प्राप्त हों, जहाँ सब परस्पर प्रेम-भाव से रहे। जहाँ साम्प्रदायिकता और अस्पृश्यता जैसी कुरीतियाँ न हो, गाँधीजी की रामचन्द्र की स्थापना देश के सामाजिक उत्थान की चरम सीमा है।"[55]

नागार्जुन के उपन्यासों में गांधी विचारों का प्रभाव हैं, फिरभी उन्हें हम गांधीवादी विचारधारा के समर्थक नही कह सकते है। उनके प्रथम उपन्यास "रतिनाथ की चाची" में चाची पर गांधीवाद का प्रभाव देखा जा सकता है। चाची चर्खा चलाती है और अपने बारीक सूत के कारण अखिल भारतीय सूत प्रतियोगिता में प्रथम पदक पाती है। "वरुण के बेटे" में मोहन माँझी बाढ़-पीड़ितों को मालगाडी के डिब्बे में जगह दिलाने के लिए गांधीवादी मार्ग अपनाने की प्रेरणा देता है। वह युग राष्ट्रीय चेतना का था और जन-मानसपर गांधीवादी विचारधारा का प्रभाव होने से इसकी अभिव्यक्ति नागार्जुन ने की है।

प्राय: नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में गांधीजी के विचार और उनके चेलों के प्रति अपनी नाराजगी ही प्रगट की है। कारण कांग्रेसी नेता तथा गांधीजी के शिष्य अपने उच्च आदर्शों से गिर गये थे। गांधीजी की शिक्षाओं को उनके चेले भूल गये हैं "रतिनाथ की चाची" उपन्यास में चाची सूत कातने की कम मजदूरी मिलने से गांधीजी के चेलोंपर अविश्वास प्रगट करते हुए कहती है - "गाँधी जी के चेले इस प्रकार की बेईमानी क्यों करते हैं? "[56] नागार्जुन ने आजादी के पहले ही गांधीजी के चेलों के लक्षण पहचान लिए थे, जो आजादी के बाद खुलकर सामने आ गए। गांधीजी का नाम लेकर सत्ता प्राप्त करनेवाले कांग्रेसियों की यह प्रवृत्ति है कि या तो वे मजदूरों को कम मजदूरी देंगे अथवा मजदूरी देने के समय गायब हो जायेंगे। पानी की तरह पैसा बहाकर कोसी बांध बांधते समय मजदूर काम तो करते थे, लेकिन बाबू लोगों से मजदूरी नहीं मिली। मजदूरी देते वक्त नेता लोग गायब होते थे। कोसी बांध पर मजदूरी करने के लिए गए टुन्नी का अनुभव आक्रोश ही पैदा करता है - "पहली बार जिस बाबू ने नाम लिखा, वह दूसरी बार नहीं मिला। दूसरे दिन जो भाई काम लेने आए, दो रोज बाद उनका भी पता नहीं।---- छदाम का भी दरसन नहीं हुआ। उधार----- देने वाला दूकानदार भला क्यों छोड़ने लगा? कुदाल रख ली, टोकरा रख लिया, धोती तक उतरवा ली। कमर से गमछा लपेटे दो दिन, दो रात का भूखा मैं घर लौट आया हूँ----।"[57]

"बलचनमा" उपन्यास के बचनमा का अनुभव है कि गांधी जी के चेले कांग्रेसी बाबू जनता के लिए कुछ नहीं करेंगे। न वे अत्याचार खत्म करेंगे और न शोषण और अन्याय के विरुध्द आवाज उठायेंगे। अपनी बहन रेबनी पर के मालिक के अत्याचार से क्षुब्ध होकर बलचनमा कांग्रेसी फूल बाबू के पास अन्याय के विरोध में सहायता मांगने जाता है। तब फूल बाबू अपनी असमर्थता प्रगट करते हुए सिर्फ सलाह देता है - "तुम्हारा तो आपस का झगड़ा है, बहिया-महतो का। ---इसमें मेरी कोई जरुरत नहीं। जा, जाकर अपने मालिक के ही पैर पकड़। वह तुझे माफ कर देंगे।"[58] अन्याय-अत्याचार करने वालों की बेगुनाह, अन्यायग्रस्त के द्वारा माफी मांगने की यह सलाहं कांग्रेसियों का अजब न्याय है। बलचनमा जैसा सामान्य चरवाहा भी जानता है कि कंाग्रेसी नेता स्वार्थी है, उनके संस्कार सामंती है, वे किसान-मजदूरों का हित कभी नहीं करेंगे। बलचनमा "कांग्रेस के बारे में सोचने लगा कि स्वराज्य मिलने पर बाबू-भैया लोग आपस में ही दही-मछली बाँट लेंगे, जो लोग आज मालिक बन बैठे हैं आगे भी तर माल वही उडावेंगे। हम लोगों के हिस्से सीठी ही सीठी पड़ेगी।"[59] नागार्जुन ने कांग्रेस के दुहरे चरित्र को पहचाना था कि इनका जमींदारों-सामन्तो के साथ समझौता हो गया है और सत्ता में भागादारी है। तब वे अपनेवर्ग के हितों के विरोध में बलचनमा जैसे निम्नवर्ग के प्रतिनिधि की सहायता कैसे करते।

गांधीवादी सिध्दान्त और पहनावा कांग्रेसियों के लिए ढोंग और सम्मान की चीज रही है। आज की कंाग्रेस मजदूरों की नहीं, धनपतियों की समर्थक बन गयी है। वस्तुतः "राजनीति इनकी रखैल है।" जिसका मन चाहा उपयोग ये करते हैं अतः नागार्जुन के दिल में कांग्रेस के प्रति अविश्वास पैदा होना सहज ही है। गांधीवाद में अविश्वास प्रगट करते हुए उनका बलचनमा कहता है, "गांधी महतमा कल-कारखाना के खिलाफ है। वह इसके भी खिलाफ हैं कि सेठों-जमींदारों-राजाओं-महाराजों से जमीन-जायदाद और धन-सम्पदा छीनकर उसे लोगों में बाँट दिया जाय। ---- मार खाना ठीक, मारना ठीक नहीं।"[60] बलचनमा के ये शब्द गांधीवादी अहिंसा में अविश्वास और समाजवादी समानता में विश्वास के सूचक है। कई गांधीवादी नेता आजादी की कीमत चुकाना चाहते है। "अभिनंदन" उपन्यास के नरपतनारायण सिहं का कथन "कार्यकर्ता निर्लिम्त भाव से यदि सार्वजनिक निधि में से सौ-पचास लेते चलें तो इसमें बुराई कैसी----?"[61] यह कंाग्रेसी नेताओं के भ्रष्टाचार-अनैतिकता तथा स्वार्थ की दास्तान है। वे जनता की कमाई का पैसा मंत्रियों के अभिनंदन, हीरक जयन्ती, थैल भेंट देना, स्वागत-सत्कार समारोह आदि में बरबाद करते है। कंाग्रेसियों का जब जमनिया मठ जैसी पाखण्डी, भ्रष्टाचारी एवं व्यभिचारी तथा राष्ट्रविरोधी ताकतों से समझौता होता है तो वास्तविकता सामने आ जाती है। बाबा का यह कथन कितना सार्थक है कि, "तिरंगा वाले तो मठ से मिलकर चलते हैं, उन्हें मदद मिलती

है मठ से। '62 इस से स्पष्ट होता है कि कांगेस के संबंध अनैतिक आचरण करने वाले व्यक्तियों तथा संस्थाओं से रहे है।

निष्कर्षतः नागार्जुन ने गांधीवादी विचारधारा को विरोध करते हुए कांग्रेसी चरित्र के दोहरेपन को भी उद्‌घटित किया है। यह लोग अपनी बात और वेश परिवर्तित किये सामंत ही है। गांधीवादी कांग्रेसियों का काला चिट्ठा "बाबा बटेसरनाथ" का दयानाथ खोलता है - "जमीदारों, सेठों और वकीलों-बालिस्टरों की यह जमात खुली तौर पर तब भी कहॉं खेतिहरों को अपने संगठन में घुसने देती थी? गरीब जनता चाहे गाँवो की रही हो, चाहे शहरों की - उसे कांग्रेस ने कभी अपने संगठन की रीढ़ नही बनाया----। '63 इसीलिए तो किसान-मजदूर तथा शोषित-पीड़ित वर्ग का सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व करनेवाले नागार्जुन का कांग्रेस विरोध स्वाभाविक ही नहीं आवश्यक भी लगता है।

साम्यवादी दृष्टिकोण :

सन 1848 में कार्ल मार्क्स और फेड़रिक ऐंजल्सने "कम्युनिस्ट मेनिफेस्टों" द्वारा "दुनिया के मजदूरों, एक हो जाओ" नारा लगाया, इस संघर्षात्मक विचारधारा से ही साम्यवाद का जन्म हुआ। नागार्जुन की विचारधारा समय के साथ गतिशील रही है। उन्होंने देखा कि कांग्रेस और समाजवादी दल में पूँजीपति और जमीदार वर्ग के लोग घुस गये हैं, जो जन सामान्य के हितों के बजाय अपने ही वर्ग के हितोंका संरक्षण करते हैं तो उन्होंने साम्यवादी विचारधारा का समर्थन किया है। समाजवादी दल के नेताओं की नीतियाँ भी पहले जैसे दृढ़ नही रही तो मजदूरों का, किसानों का कल्याण वही पार्टी कर सकती है जिसकी नीति स्पष्ट और निश्चित हो ऐसी साम्यवादी पार्टी से लेखक का अनुराग हो गया। नागार्जुन अपनी आशाओं और विश्वासों को साम्यवाद में पूरा होते देखते है।

नागार्जुन के साम्यवादी विचारों के वाहक वीरभद्र (बाबा बटेसरनाथ), मोहन माँझी (वरुण के बेटे) और अभयानंद (इमरतिया) आदि पात्र है। वीरभद्र हिंसक विचारधारा में विश्वास करता है। "बाबा बटेसरनाथ" उपन्यास में मानव रुपधारी वटवृक्ष का यह कथन कि वीरभद्र "खुले आम सत्य व अहिंसा का उपहास करता था और महात्मा को महाधूर्त एवं पूँजीपतियों का दलाल बतलाता था। रुस के किसानों, मजदूरों और सैनिकोंने क्रान्ति का जो रास्ता अपनाया था, वीरभद्र उसी रास्ते को भारतीय जनता की मुक्ति का एकमात्र मार्ग मानता था। बात-बात में उसके मुँह से मार्क्स और लेनिन के नाम निकल आते----। '64 इस से उनके साम्यवादी विचारधारा का समर्थन होता है। उनका बलचनमा भी गांधीजी के अहिंसा के रास्ते से आज़ादी मिलना कठिन ही समझता है। अतः वह संगठित शक्ति द्वारा आन्दोलन का समर्थन करता है - "दो चार साधू महात्मा के गिड़गिड़ाने से अँग्रेजों का दिल नहीं बदलेगा। समूची

जनता आपस के भेद-भाव भुलाकर उठ खड़ी होगी तभी अंग्रेज भागेगा।"[65] "वरुण के बेटे" का मोहन मँझी "हँसिया-हथौडा-मार्का लाल झंडा वाली किसान सभा का थाना सभापति था।" वह साम्यवादी पार्टी में शामिल होने के बाद साम्यवाद का प्रचार-प्रसार लगन से करता है। मधुरी से डिप्टी मजिस्ट्रेट के ये शब्द 'मोहन मँझी ने आखिर तुम्हें भी कम्युनिज्म का पाठ पढ़ा ही दिया।"[66] मोहन मँझी को साम्यवाद का सच्चा कार्यकर्ता साबित करते है। वह अलग-अलग जातिय संगठनों को एकता के लिए हानिकारक बताता है। "मैथिली महासभा, राजपूत महासभा, यादव महासभा, दुसाध महासभा आदि जो भी सांप्रदायिक संगठन हैं सभी का बायकाट होना चाहिए। इन महासभाओं के नेता आम लोगों की एकता में दरार डालने का ही एकमात्र काम करते हैं।"[67] मोहन मँझी साम्यवादी होने के नाते अपने गाँव का हितचिंतक और निस्वार्थी सेवक है। मधुरी और उसके साथी जेल जाते समय नारे लगाते हैं, "मछुआ-संघ जिन्दाबाद----- हककी लड़ाई-जीतेंगे। जीतेंगे।।---- गढ़ पोखर हमारा है, हमारा है।---।"[68] यह साहस और अन्याय के विरोध में मर मिटने की वृति साम्यवादी ही है।

"इमरतिया" उपन्यास के जमनिया-मठ के क्रूर एवं पाखंडी बाबा के काले कारनामों का पर्दाफाश करने का काम लाल झण्डेवाला अभयानंद ही करता है। उपन्यासकार की राय है कि "लाल झण्डे वाले जिद्दी होते है, झण्डा, उठा लेंगे तो परेशान कर देंगे, मिल वालों की नाक का पानी निकाल देंगे।" यह लेखक के साम्यवाद पर विश्वास की ही झलक है। उपन्यासकार की मान्यता है कि वर्तमान सामाजिक वैषम्य को नष्ट करने का कार्य केवल साम्यवाद ही कर सकता है। इस आशय की अभिव्यक्ति "बाबा बटेसरनाथ" उपन्यास के अन्त में होती है। उपन्यास का अन्त स्वाधीनता! शांति! प्रगति! के नारे से होता है जो साम्यवाद का ही नारा है। "कुंभीपाक" में उन्होंने गाँवों में ही नहीं शहर की भीड़ तक साम्यवादी दर्शन देखा है। इससे स्पष्ट संकेत मिलता है कि उपन्यासकार सभी वर्तमान समस्याओंका समाधान केवल साम्यवाद ही मानते है।

निष्कर्षत : हम कहते है कि नागार्जुन की सहानुभूति शोषित-पीड़ित, सर्वहारा वर्ग के साथ होने से उनकी आस्था साम्यवाद में है। सत्ताधारियों ने साम्राज्यवाद से आर्थिक और जमीदारों के साथ राजनीतिक समझौता किया है। याने भारत में जनवादी क्रान्ति न होकर केवल सत्ता का हस्तांतरण हुआ है। समाजवादी क्रान्ति की बात तो अलग रही। अतः इस कमी की पूर्ति के लिए नागार्जुन को साम्यवादी दल से कुछ आशाएँ है, क्योंकि इस दल की नीतियाँ सर्वहारा वर्ग के हित की है।

समाजवादी समानता में विश्वास :

समाजवाद यह मजदूर वर्ग की विचार प्रणाली और मजदूरों का आन्दोलन माना जाता है। "मार्क्सवाद को ही वैज्ञानिक समाजवाद की संज्ञा देना श्रेयस्कर है। यह समाजवाद ही सम्पूर्ण जीवन

दर्शन है।"[69] इस विचारधारा के साहित्य में सर्वहारा वर्ग वीरता के साथ संघर्षरत दिखाई देता है, वह अन्याय का प्रतिकार करता है, उसमें निराशा की भावना न होकर नये समाज निर्माण की उमंग होती है। पूँजीवाद के नाश और निम्नवर्ग की विजय में आस्था व्यक्त की जाती है।

नागार्जुन ने अपनी कलम ऐसे विशाल वर्ग के कल्याण के लिए अर्पित की है जो सनातन काल से पीड़ा तथा प्रतिकूलता के साथ मौन रुप संघर्ष करता आ रहा है। वह दिन-रात के अथक परिश्रम के बाद भी सुख की श्वास नही ले सकता तथा अपनी गरीबी से ऊपर नहीं उठ सकता, यहाँ तक कि अपने गरीबी की करुण गाथा भी किसे सुना नहीं सकता। कांग्रेस और उसकी नीतियों से भारत की गरीब जतना का मोहभंग होने से नागार्जुन अपने कतिपय उपन्यासों में समाजवादी विचारधारा की ओर उन्मुख हुए हैं। "रतिनाथ की चाची" का ताराचरण समाजवादी पार्टी की ओर झुक गया है। वह देख रहा था कि गांधीजी की कांग्रेस के द्वारा जो स्वराज्य मिलने जा रहा था वह पूँजीपतियों, सामन्तों और जमींदारों का स्वराज्य होगा। "बलचनमा" उपन्यास का नायक बलचनमा को कांग्रेसी "फूल बाबू से असर्धा हो गई है" और राधाबाबू पर श्रध्दा बढ़ गयी है, कारण वे सोशलिस्ट बन गये थे। उसकी किसान समर्थक नीति से वह बेहद प्रभावित होता है। कांग्रेस और समाजवादी पार्टी के अन्तर को बलचनमा जानता है कि, कांग्रेसी "अंग्रेज से भी कड़ाई का बर्ताव नही रखते। उनका कहना है कि एक न एक दिन अंग्रेजों की मति फिर जायेगी तब वे आप यह मुलुक छोड़कर चल देंगे उनको जास्ती परेशान मत करो। इस पर भैया, सोशलिस्टों का क्या कहना था ? उनका कहना यही था कि दो-चार साधू-महात्मा के गिड़गिड़ाने से अँग्रेजोका दिल नहीं बदलेगा। समूची जनता आपस में भेद-भाव भुलाकर उठ खड़ी होगी, तभी अंग्रेज भागेगा।---- जिसका हर-फार उसकी धरती। जिसका हुनर और जिसका हाथ उसी का कल कारखाना।--- कमानेवाला खायेगा-इसके चलते जो कुछ हो।"[70] नागार्जुन का बलचनमा समाजवादी दल के कार्यक्रम से इतना प्रभावित हुआ है कि समाजवादी नेताओं के नेतृत्व में लड़ता है।

नागार्जुन किसान-मजदूरों के सशक्त और व्यापक संगठन से ही शोषण से मुक्ति पाना चाहते है, समाजवादी नेताओंकी भी संगठन के प्रति हमदर्दी है। समाजवादी नेता राधा बाबू और डॉ. रहमान का स्पष्ट मत है - "किसान की आजादी आसमान से उत्तरकर नही आयेगी, वह परगट होगी नीचे-जुती धरती के भुरभुरे ढेलों को फोड़कर।"[71] "पारो" के लाल भैया देशकी आजादी के दीवाने होकर समाजवादी दल में शरीक होते है और सत्याग्रह करते हैं। "नयी पौध" का वाचस्पति समाजवाद के प्रति समर्पित प्रमुख नेता है। वह व्यक्ति संकट को समाज का संकट और समाज के संकट को देश का संकट मानता है, यह विचार भी समाजवादी चेतना सेयुक्त ही है। "बाबा बटेसरनाथ" में लेखक के

विचार वर्गविहीन समाज की स्थापना के ही पोषक है। अभी आजादी नेताओं और उच्च वर्गीय लोगोंतक ही आकर रुक गयी है। उसे जन-जन तक पहुँचाने के लिए सारे मजदूर-किसान और सर्वहारा लोगों को संघर्ष के लिए तैयार होना होगा।

निष्कर्षतः हमारा विचार है कि नागार्जुन की समाजवादी समता में दृढ़ आस्था है। क्योंकि समाजवादी नेता और विचार प्रगतिशील होकर वे किसानों-मजदूरों के साथ खड़े है, तथापि उन्होंने ही किसानों में आजादी और संघर्ष की चेतना भरी है। बलचनमा द्वारा लेखक यही कहना चाहते है कि अब किसान वर्ग जमीदारों की नरम शिकार नहीं रह गया है। वह अपने खेत, फसल, घर और आबरु के लिए उजड़ जायेगा, जेल जायेगा किन्तु अत्याचारी के सामने झुकेगा नहीं। वह जीवन संघर्ष के लिए तैयार है। समाज में शोषण रहित व्यवस्था लाने के लिए पुराना ढाँचा बदलना होगा, और यह नयी व्यवस्था केवल समाजवाद के जरिए ही आएगी यह उपन्यासकार नागार्जुन का विश्वास है।

ग्रामीण नव निर्माण और सर्वोदय :

नागार्जुन सही भारत देहातों में ही देखते है। अतः देहातों का सुधार देश विकास का अभिन्न अंग है। "दुखमोचन" उपन्यास में ग्रमीण पुर्ननिर्माण का स्वर प्रमुख है। गाँव के लोगों का श्रमदान कर मकान एवं रास्तें बनाना, आग बुझाने जैसी आपत्तियों में हाथ बाँटना यह स्वावलंबी एवं आत्मनिर्भर ग्राम के निर्माण की कूंजी है। उपन्यास का प्रधान पात्र दुखमोचन अपनी और अपने परिवारकी सुख-सुविधाओं की ओर ध्यान न देते हुए सार्वजनिक कार्य में ही सुख मानता है। सर्वोदयी दर्शन से प्रभावित होकर वह परोपकार में ही कार्यरत रहता है।

नागार्जुन गांवों का सर्वांगीन विकास गाँव में उपलब्ध साधनों के बलबूते पर ही करना चाहते है, जिससे गाँवके प्रत्येक व्यक्ति का कल्याण हो। "वरुण के बेटे" का मोहन माँझी मलाही गोंढ़ियारी गाँव के पूर्ण विकास का सपना देखता है, "ये ग्रामांचल मछली-पालन-व्यवसाय का आधुनिकतम केन्द्र हो जाएँगे। वैज्ञानिक प्रणाली से यहाँ मछलियाँ पाली जाएँगी। ---- एक-एक सीजन में पचास-पचास हजार रुपायों तक की आय होगी। मलाही-गोंढ़ियारी का एक-एक परिवार गरोखर की बदौलत सुखी-सम्पन्न हो जाएगा। --- पक्की-ऊँची भिडों पर इकतल्ला सैनिटोरियम बनेगा, फिर दूर-पास के विश्रामार्थी आ-आकर यहाँ छुट्टियाँ मनया करेंगे---।"[72] इस तर भारतीय देहातों को आधुनिक रुप में देखने का नागार्जुन का आशावाद प्रगट हुआ है।

तात्पर्य कि नागार्जुन सेनेटोरियम जैसी आधुनिक सुविधाएँ गांवो में लाकर विकास का विकेन्द्रीकरण करना चाहते है। रोजी-रोटी के लिए शहरों की ओर भागनेवाले मजदूरों को अपने गाँवों

में ही मजूरी की सुविधा निर्माण करने की अत्याधुनिक दृष्टि उपन्यासकार के पास है। स्वावलम्बन और स्वाभिमान के सहारे नागार्जुन ऐसे आदर्श ग्राम की निर्मिती करना चाहते हैं, जिसमें शोषण और भ्रष्टाचार न हो, समता-समृध्दि और मानवता की भावना हो।

नारी चेतना के प्रति उदार दृष्टिकोन :

नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में नारी के उत्थान और प्रगतिशील चेतना का समर्थन किया है। नागार्जुन के लिए नारी पूजा की वस्तु तथा सौन्दर्य की जादू न होकर पुरुष के समान दुनिया का एक महत्वपूर्ण अंग है। नारी को आधुनिक चेतना और शक्ति से संपन्न कर मानवीय अधिकारों से युक्त करना नागार्जुन का उद्देश्य है। उन्होंने नारी की ओर बड़े सम्मान और आत्मीयता से देखा है।

नागार्जुन ने नारी जागृति के लिए नारी-शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया है। उनके उपन्यास के पात्र अनपढ़ होते हुए भी नारी शिक्षा का महत्व भली-भांति जानते है। बलचनमा इस संदर्भ में कहता है - "जब लड़कियाँ भी लड़कों की तरह पढ़ी-लिखी होने लगेंगी तभी इस मुल्क का उध्दार होगा।"[73] नागार्जुन का दृढ़ मत है कि शिक्षा से ही समाज में नारी आदर और जिम्मेदारी का स्थान पा सकती है। "उग्रतारा" की उगनी गीता को बताती है कि "विद्या तीसरी आँख होती है। शिक्षित नारीको ही सच्चे रुप में नारी मानते है। "पारो" की नायिका पार्वती के यह शब्द, "जो स्त्री पढ़ी-लिखी नही, वह स्त्री कहलाने के योग्य नहीं है।"[74] नागार्जुन नारी समानता के पक्षधर होने से उनके नारी पात्र अपने अधिकारों के लिए जागृत और हर क्षेत्र में समान दर्जा-प्राप्ति के लिए संघर्षशील है। "कुंभीपाक" की चम्पा भुवन को लिखती है, "घबड़ाकर शादी न कर लेना भुवन, न किसी आश्रम में भर्ती होना। मुझे लगता है कि तुम समाज की इस सड़ांघ से-इस कुंभीपाक नरक से निकलकर नई दुनिया के समझदार लोगों के बीच पहुंच गई हो---वहाँ, जहाँ के नर-नारी मिल-जुलकर आगे बढ़ते हैं,---जहां पुरुष, बल होगा तो स्त्री बुध्दि होगी, स्त्री शक्ति होगी तो पुरुष ज्ञान, भुवन तुम निश्चय ही उस संसार में पहुंच गई हो।"[75] नागार्जुन श्रम, प्रज्ञा, सहयोग, विवेक और सुरुचि में स्त्री-पुरुष का समान हिस्सा मानते हैं। "वरुण के बेटे" के मधुरी का अपने पति को तलाक देना, दूसरा विवाह करने या एकाकी रहने का विचार प्रगट करना ही आधुनिक विचारों में लेखक का विश्वास प्रगट होता है। "कुभीपाक" के रायसाहब के शब्दों से व्यक्त होता है कि स्त्रियों को साथ लिए बिना हम आगे नहीं बढेंगे। नारी के संदर्भ में नागार्जुन के विचार इतने प्रगतिशील है कि उसके अपना वर स्वयं चुनने के अधिकार का भी समर्थन करते है। "अभिनंदन" उपन्यास के ललनजी का यह कथन - "पढ़-लिख के काम करेंगी, आप, अपना दूल्हा खोज लेंगी।"[76] यह स्वेच्छा विवाह की धारणा को स्पष्ट करता है।

नागार्जुन की नारी राजनीतिक चेतना से प्रभावित ही नही तो राजनीतिक आन्दोलनों में

सक्रिय सहभाग भी लेती है। "वरुण के बेटे" की मधुरी जमींदारों के विरुध्द मछुआरों का पक्ष लेने से गिरफ्तार होते वक्त नारे लगाती है "इन्किलाब ज़िंदाबाद। मछुआ-संघ जिंदाबाद---- हक की लड़ाई--- जीतेंगे। जीतेंगे--- गढ़पोखर हमारा है, हमारा है।"[77] यह नारी के साहस और सक्रिय राजनीति सहभाग का परिचय है। नारी की दासता और दुर्दशा का कारण उसकी आर्थिक परावलंबिता है। और नागार्जुन नारी की आर्थिक और सामाजिक स्वतंत्रता के कल्पक है। यह स्वतंत्रता नारी जाति अपने बलबुते पर ही प्राप्त करेगी। दी गई स्वतंत्रता कभी भी सार्थक और मूल्यवान नहीं होती। अतः नागार्जुन की नारियाँ सामाजिक रुढ़ियों एवं परंपराओं के साथ जूझते हुए श्रमपर आधारित स्वावलंबी जीवन यापन करती है। "कुंभीपाक" में यह लेखक नारी को सुविधा और विलास के शोषण से मुक्त कर उसे स्वावलंबी बनाना चाहता है। वेश्या का नारकीय जीवन बिताने के बाद 'चम्पा" के द्वारा शिल्पकुटीर की स्थापना और टाइप मशीन लेकर बैठना इसी आर्थिक आत्मनिर्भरता की प्रस्तावना है। "गृह-शिल्प कुटीर नामक दुकान खोलकर चम्पा अचार, पापड़ और बड़ियाँ बेचकर स्वकमाई की रोटी खाती है। "रतिनाथ की चाची" भी आजीवन चरखा कात कर अपने को आत्मनिर्भर बनाती है। नागार्जुन के नारी पात्र पुरुष की प्रेरणा बनकर आये है और श्रम में विश्वास कर स्वावलंबी जीवन बिताने के आकांक्षी हैं।

निष्कर्ष :

नागार्जुन नारी के प्रति अति उदार कलाकार है। वे नारी को स्वतंत्रता, सम्मान और अधिकार देने के हिमायती है। उनके नारी पात्र साहसी और बोल्ड होने से स्वाधीनता की भीख मांगते नहीं दिखते। यहाँ महिलाएँ दिलेर और विचार पुष्ट होने से प्रतिशोध की भावना से ग्रस्त नहीं है, वह अपने आपको बदलने की क्षमतावाली है। नागार्जुन ने नारी की शारीरिक पवित्रता की अपेक्षा मन की शुध्दता को महत्व देकर नारी-नैतिकता के सनातनी दृष्टिकोण पर प्रहार किया है। नागार्जुन की नारी के प्रति आत्मीयता, विशाल हृदयता और प्रगतिशील विचारधारा ही उनके उपन्यासों में व्यक्त हुई है। चम्पा (कुंभीपाक) और उगनी (उग्रतारा) के रुप में भारत की स्त्रियाँ आत्मनिर्भर और साहसिक जीवन निर्णयों की ओर बढ़ रही हैं। नागार्जुन की कामना यह रही है कि नारी समाज का उपयोगी अंग बने।

नागार्जुन के व्यक्तित्व, कृतित्व और जीवन दृष्टि में मौलिक भेद नहीं है। उनके उपन्यासों में अभिव्यक्त उपर्युक्त विचारधाराओं के विश्लेषण के आधारपर यह दृष्टिगत होता है कि उनमें भारतीय समाज के उस वर्ग का मुखड़ा झलकता है जो आज भी प्रगति और सुख-सुविधा की खोज में

भटक रहा है। नागार्जुन के उपन्यास साहित्य का केन्द्र किसान-मजदूर और नारी है, उनकी सर्वांगिन प्रगति से अनुप्रणित उनका दार्शनिक पक्ष है। नागार्जुन की ब्रिटिश साम्राज्यवाद तथा देशी शासन व्यवस्था के प्रति इसलिए नफरत है कि वे निम्नवर्ग का हित सोचने के बजाय अपने वर्ग के हित का ही रक्षण करते हैं। कांग्रेस का जमींदार तथा पूँजीपतियों के साथ सत्ता प्राप्ति के लिए हुआ गुप्त समझौता उन्हें मार्क्सवाद तथा साम्यवाद की ओर आकर्षित करता है। लेकिन उन्होंने विदेशी मार्क्सवाद तथा लेनिन आदि के साम्यवाद का केवल अनुकरण नहीं किया तो उसे भारतीय संस्कृति और परिवेश के अनुरुप सर्वहारा वर्ग के कल्याण के लिए परिवर्तित किया है। नागार्जुन की कामना यह रही है कि वर्ग विहीन शोषण रहित, मानवतावादी गुणों से युक्त समाजवादी समाज की स्थापना करना। स्वस्थ समाज की स्थापना के लिए नागार्जुन का निम्नवर्ग श्रम को यज्ञ समझकर विपरीत परिस्थितियों से जूझते हुए आदर्श और अनुकरणीय "सर्वहारा के विकास" का दर्शन स्थापित करता है।

संदर्भ सूची :-

1. सामाजिक जीवन और साहित्य : डॉ. रामरतन भटनागर, प्र.सं. 1965, पृ. 13
2. भार्गव आदर्श हिन्दी शब्द कोशः संपा. रामचन्द्र पाठक, सं. 1969, पृ. 39।
3. महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में बदलते सामाजिक सन्दर्भ : डॉ. शीलप्रभा वर्मा, प्र.सं. 1987, पृ. 177
4. "इष्ट प्राप्त्यर्थ व अनिष्ट निवारणार्थ अलौकिक शक्तिची साधना किंवा आराधना म्हणजे धर्म होय।" मराठी विश्वकोशः संपा. तर्कतीर्थ लक्ष्मणशास्त्री जोशी, खण्ड 8 वॉ. पृ.7, (महाराष्ट्र साहित्य संस्कृति मण्डल), मुंबई, 1979.
5. संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह "दिनकर" (से उधृत) प्र.सं. 1958, पृ. 563
6. नव - आधुनिक हिन्दी निबंध : राजेश शर्मा, सं. 1988, पृ. 15।
7. भारत में संस्कृति एवं धर्म : डॉ. एम्. एल्.शर्मा, प्र.सं. 1960, पृ. 232
8. रतिनाथ की चाची : नागार्जुन, प्र.सं. (वाणी) : 1985, पृ. 48
9. बाबा बटेसरनाथ : नागार्जुन, तीसरा सं. 1989 (राजकमल), पृ. 54
10. दुखमोचन : नागार्जुन, सं. 1981 (राजकमल) पृ. 117
11. बाबा बटेसरनाथ : नागार्जुन, तीसरा सं. 1989 (राजकमल), पृ. 72
12. वही, पृ. 68
13. नयी पौध : नागार्जुन, प्रकाशन 1980 (राजकमल), पृ. 44
14. रतिनाथ की चाची : नागार्जुन, प्र.सं. (वाणी) : 1985, पृ. 27
15. वरुण के बेटे : नागार्जुन, प्र.सं. (वाणी) 1984, पृ. 59
16. बलचनमा : नागार्जुन, प्र.सं. 1989 (वाणी), पृ. 25
17. बाबा बटेसरनाथ : नागार्जुन, तीसरा सं. 1989 (राजकमल), पृ. 74
18. रतिनाथ की चाची : नागार्जुन, प्र.सं. (वाणी) : 1985, पृ. 47
19. बाबा बटेसरनाथ : नागार्जुन, तीसरा सं. 1989 (राजकमल), पृ. 69
20. बलचनमा : नागार्जुन, प्र.सं. 1989 (वाणी) पृ. 133
21. नयी पौध : नागार्जुन, प्रकाशन 1980 (राजकमल), पृ. 86
22. जमनिया का बाबा : नागार्जुन, प्र.सं. 1968 (किताब महल), पृ. 84-85
23. बाबा बटेसरनाथ : नागार्जुन, तीसरा सं. 1989 (राजकमल), पृ. 71-72
24. वही, पृ.26-27

25. बाबा बटेसरनाथ : नागार्जुन, तीसरा सं. 1989 (राजकमल), पृ. 68-69
26. बलचनमा : नागार्जुन, प्र.सं. 1989 (वाणी), पृ. 133
27. नयी पौध : नागार्जुन, प्रकाशन 1980 (राजकमल), पृ. 87
28. रतिनाथ की चाची : नागार्जुन, प्र.सं. (वाणी), 1985, पृ. 38
29. जमनिया का बाबा : नागार्जुन, प्र.सं. 1968 (किताब महल), पृ. 9
30. रतिनाथ की चाची : नागार्जुन, प्र.सं.(वाणी), 1985, पृ. 65
31. जमनिया का बाबा : नागार्जुन, प्र.सं. 1968 (किताब महल), पृ. 37
32. वही, पृ. 24
33. रतिनाथ की चाची : नागार्जुन, प्र.सं. (वाणी), 1985, पृ. 88
34. जमनिया का बाबा : नागार्जुन, प्र.सं. 1968 (किताब महल), पृ.104
35. वही, पृ. 17
36. इमरतिया : नागार्जुन, प्र.सं. 1968 (राजपाल), पृ. 28
37. जमनिया का बाबा : नागार्जुन, प्र.सं. 1968 (किताब महल), पृ. 104
38. वही, पृ. 17
39. रतिनाथ की चाची : नागार्जुन, प्र.सं. (वाणी), 1985, पृ.41
40. अभिनंदन : नागार्जुन, सं. 1993 (यात्री) पृ. 20
41. "बृहद हिन्दी कोश" : ज्ञानमंडल, बनारस, सं. 2009, पृ. 586
42. "The love, study or pursuit of wisdom or of Knowledge of things, their causes, whether theoritical or practical". : The Oxford English Dictionary, Volume VII, P.No. 781.
43. महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में वैचारिकता : डॉ. शशि जेकब, प्र.सं. 1989 पृ.143
44. संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह "दिनकर" प्र.सं. 1958, पृ. 64
45. हिन्दी उपन्यास साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन : डॉ. रमेश तिवारी, प्र.सं. 1972, पृ.265
46. हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प विधि : डॉ. आदर्श सक्सेना, प्र.सं. 1971, पृ. 235
47. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य में जीवन दर्शन : डॉ. सुमित्रा त्यागी, प्र.सं. 1978, पृ.20

48. हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्पविधि : डॉ. आदर्श सक्सेना, प्र.सं.1971 पृ. 237

49. बलचनमा : नागार्जुन, प्र.सं. 1989 (वाणी), पृ. 141

50. बाबा बटेसरनाथ : नागार्जुन, तीसरा सं. 1989 (राजकमल), पृ. 121

51. अभिनंदन : नागार्जुन, सं. 1993 (यात्री) पृ. 27

52. नयी पौध : नागार्जुन, प्रकाशन 1980 (राजकमल) पृ. 122

53. रतिनाथ की चाची : नागार्जुन, प्र.सं. (वाणी), 1985, पृ. 143

54. बाबा बटेसरनाथ : नागार्जुन, तीसरा सं. 1989 (राजकमल), पृ. 84

55. गांधी विचारधारा का हिन्दी साहित्यपर प्रभाव : डॉ.अरविन्द जोशी, मथुरा 1973, पृ.75

56. रतिनाथ की चाची : नागार्जुन, प्र.सं. (वाणी), 1985, पृ. 88-89

57. वरुण के बेटे : नागार्जुन , प्र.सं. (वाणी) 1984, पृ. 43

58. बलचनमा : नागार्जुन, प्र.सं. 1989 (वाणी), पृ. 85

59. वही, पृ.140

60. वही, पृ. 140

61. अभिनंदन : नागार्जुन, सं. 1993 (यात्री), पृ. 97

62. इमरतिया : नागार्जुन, प्र.सं. 1968 (राजपाल), पृ. 69

63. बाबा बटेसरनाथ : नागार्जुन, तीसरा सं. 1989 (राजकमल), पृ. 141

64. वही, पृ. 105-106

65. बलचनमा : नागार्जुन, प्र.सं. 1989 (वाणी) पृ. 140-141

66. वरुण के बेटे : नागार्जुन, प्र.सं. (वाणी) 1984, पृ. 115

67. वही, पृ. 38-39

68. वही, पृ. 118

69. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में गांधीवाद : डॉ. शैलबाला, प्र.सं. 1977 (लखनऊ), पृ. 14

70. बलचनमा : नागार्जुन, प्र.सं.1989 (वाणी), पृ. 140-141

71. वही, पृ. 171

72. वरुण के बेटे : नागार्जुन, प्र.सं. (वाणी) 1984, पृ. 32

73. बलचनमा : नागार्जुन : प्र.सं. 1989 (वाणी), पृ. 114

74. पारो : नागार्जुन, प्र.सं. 1975 (संभावना), (कुलानंद मिश्र द्वारा हिन्दी अनुवाद) पृ. 62

75. कुंभीपाक : नागार्जुन, तृतीय सं. 1978 (राजपाल), पृ. 104-105

76. अभिनंदन : नागार्जुन, सं. 1993 (यात्री), पृ. 77

77. वरुण के बेटे : नागार्जुन, प्र.सं. (वाणी) 1984, पृ. 118

- - - -

अध्याय - 6

उ प सं हा र

(उपलब्धियाँ और संभावनाएँ)

अब तक हम नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित निम्नवर्ग के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं दार्शनिक पक्ष का अध्ययन कर चूके हैं। इस अध्ययन के उपरान्त कुछ निष्कर्ष एवं उपलब्धियाँ सामने आयी हैं।

साहित्य समाज का स्पंदन होता है, तथा साहित्य की विषय वस्तु समाज से, प्रभावित होती है। नागार्जुन का उपन्यास साहित्य भी किसानों-मजदूरों और उपेक्षित नारियों के जीवन की पीड़ा, आक्रोश एवं विद्रोह का स्पंदन है। हिन्दी और मैथिली के सुप्रसिध्द साहित्यकार नागार्जुन का जीवन अभावों और उपेक्षाओं से टकराते हुए व्यतीत हुआ है। परिणामतः निम्नवर्ग के चित्रण में व्यक्त उनकी सहानुभूति सहज और आत्मप्रेरित है। नागार्जुन ने अपने वैयक्तिक जीवन में जो देखा, परखा और भोगा है उसकी और बिहार के मिथिला प्रदेश के देहाती जन - जीवन की सफल व्याख्या उपन्यास साहित्य में की है। उनका साहित्यकार जन-जीवन से अलग न रहकर सदाही अपने देश की सामान्य जनता के साथ रहा है। जनता के स्वर में स्वर मिलाकर उसे प्रेरणा देते हुए उनके कंधे से कंधा मिलाकर चलने वाले सक्रिय "साथी" नागार्जुन है। उनके अपने निजी जीवन में अभावग्रस्तता तथा पीड़ाओं का साम्राज्य होते हुए भी उनके उपन्यास साहित्य में निराशा का भाव तथा पलायनवादी वृति न होकर जीवन के प्रति आस्था, आशा, अन्याय का प्रतिकार और श्रम में रत रहने का दृढ़ संकल्प व्यक्त हुआ है। व्यथा-वेदना का, शोषण और क्रूरता का जीवन्त चित्र खींचनेवाले इस कल्पना कुबेर के भीतर उपेक्षित वर्ग के प्रति जो महाकरूणा है वह आत्म पीड़न से उत्पन्न हो गयी है। नागार्जुन के साहित्य का वास्तविक संसार सर्वहाराओं का संसार है, वे आँखों देखी-भोगी दुनिया के लेखक है। जन भावना का यह चितेरा जनता को ही माँ-बाप, वही अपना ईश्वर भी मानता है। निराला-सा फक्कड़पन, कबीर जैसी अक्कड़ता, जटिल स्थितियों से टक्कर लेते हुए अपनी मस्ती में किसी को कुछ न समझ अनुचित बात के लिए प्रत्येक को

SHIVAJI UNIVERSITY LIBRARY KOLHAPUR

फ़टकार देना आदि गुण हमें नागार्जुन के व्यक्तित्व में दिखाई देते हैं।

नागार्जुन समाजवादी यथार्थवादी विचारधारा के समर्थक होने से शोषित वर्ग की पीडा और वर्ग संघर्ष उनके उपन्यासों में पूरे जोश के साथ प्रस्फुटित हुआ है। वे निम्नवर्ग जीवन को सुधारने के लिए प्रतिबध्द है। उन्होंने अपने उपन्यासों में अनेक सामाजिक समस्याओं को उठाकर उसका समाधान मार्क्सवादी चिंतन के आधार पर प्रस्तुत किया है। सदियों से उच्च वर्ग के शोषण से विवश होकर अन्याय, अत्याचार सहते आये निम्नवर्ग के जीवन में प्रगतिशीलता की चेतना विकसीत की है। उपक्षितों को संगठित कर अपनी दुर्दशा के प्रति सजग कर अपने अधिकारों के लिए संघर्षशील रहने का संदेश दिया है, सोते से जगाकर उनकी व्यथाओं को वाणी दी है। उनका बलचनमा निम्नवर्गीयों में जागती हुई चेतना का प्रतीक है, यही चेतना उसे ग्रामीण मजदूर की नयी पीढ़ी का प्रतिनिधि बना देती है। वह "आधा खेत मजदूर और आधा किसान है", वह मानता है कि धरती उसकी है जो उसे जोतता है और बोता है। बलचनमा के अतिरिक्त दुखमोचन (दुखमोचन), ताराचरण (रतिनाथ की चाची), जैकिसुन (बाबा बटेसरनाथ) और कमेश्वर (उग्रतारा) आदि ऐसे पात्र हैं जिन्हें समाज विरोधी तत्वों की पूरी पहचान है। नागार्जुन के उपन्यासों के पात्र अभावग्रस्त जीवन के कष्टों को झेलनेवाले हैं। दलित और पीड़ित वर्ग का वास्तविक चित्रण करनेवाले नागार्जुन इस वर्ग के सांस्कृतिक प्रतिनिधि है।

उपन्यासकार नागार्जुन नारी स्वतंत्रता के प्रबल हिमायती है। उन्होंने अपने उपन्यासों में नारी जीवन संबंधी अनेक महत्वपूर्ण समस्याओंका जैसे - दहेज प्रथा, बाल विवाह, अनमोल विवाह, विधवा विवाह, वेश्यावृति, अन्तर्जातिय विवाह, नारी विक्रय एवं कुलीनता आदि का निरुपण कर उनका हल भी प्रस्तुत किया है। उन्होंने विधवा विवाह को आवश्यक एवं नैसर्गिक बताकर उसकी आवश्यकता प्रस्थापित की है। नारी विकास के लिए उसे राजनीतिक अधिकार प्रदान करने की बात पर जोर देते हुए उसे पुरुषों की बराबरी में आने के लिए आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न बनाने की जरुरत व्यक्त की है। शिक्षा प्राप्ति से ही नारी अपने अधिकारों के प्रति सजग होकर उद्योग व्यवसाय से आत्मनिर्भर होगी, परिणामतः समाज के भ्रष्ट भेड़ियों के चंगुल की शिकार नहीं बनेगी। नागार्जुन नारी तन की अपेक्षा उसके मन की पवित्रता महत्वपूर्ण मानते है। साथ ही नारी स्वतंत्रता का उद्घोष करते हुए उसे अपना पति स्वयं चुनने का अधिकार बहाल करते है, जो सामाजिक स्वास्थ्य के लिए स्वाभाविक भी है। युगों से नारी पर होते आए अत्याचारों को खत्म कर उसे समाज का एक महत्वपूर्ण अंग के रुप में सम्मान देते है।

नागार्जुन प्रेमचंद की ग्रामीण सांस्कृतिक परंपराको अपना कर चले है। "वरुण के बेटे" के मछुए, "बाबा बटेसरनाथ" के पीड़ित - शोषित जन, "दुखमोचन" के देहाती लोग प्रेमचंद की परंपरा

के वाहक है लेकिन विकसित रुप में। इन लोगों के प्रति अभिव्यक्त उनकी संवेदना ह्रुदय की गहराई से निकली प्रतीत होती है। अतः उनका "बलचनमा" एक महान उपन्यास के रुप में प्रसिध्दि पा गया है। नागार्जुन हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों के जनक है। उनके आंचलिक उपन्यास "बलचनमा" से आधुनिक एवं भावी उपन्यासकारों को आंचलिक उपन्यास लिखने की प्रेरणा मिलती है। प्रायः उन्होंने अपने सभी उपन्यासों में पीड़ित जनता के जीवन को सुधारने के लिए मजदूरों-किसानों को संगठित कर संघर्षरत रहने की प्रेरणा दी है। "हीरक जयंती" में भ्रष्ट नेतृत्व पर व्यंग्य किया है और "इमरतिया" में ढोंगी साधुओं के पाखण्ड तथा वासनावृति की पोल खोली है। देश में व्याप्त भ्रष्टाचार, राजनैतिक तत्वहीनता, आडम्बर और रुढ़ियों तथा सांप्रदायिकता के विरुध्द उनके मन में तीव्र आक्रोश है।

. नागार्जुन की दृष्टि से भारतीय किसान - मजदूरों की आर्थिक दुरावस्था के लिए प्राकृतिक और मानवी घटक उत्तरदायी है। भूकम्प - बाढ़ तथा अकाल आदि से निम्नवर्ग के जीवन में संकटों की बरसात ही होती है। निम्नवर्ग रुढिप्रिय तथा अज्ञानी होने से साम्राज्य, पूँजीपति तथा महाजनोंद्वारा दिन - दहाड़े शोषण, लूट-खसोट होती है। यह वर्ग अंधश्रध्दालु तथा धार्मिक होने से पंडा-पुरोहित, साधु-महंत, तांत्रिक-मांत्रिक के हथकंडों का सहज ही शिकार बनता है। अतः निम्नवर्ग के लोग रोटी-कपडा और मकान जैसी मूलभूत आवश्यकताओं से भी वंछित रहते है। खुद अनपढ़ होते है और न ही अपने बाल-बच्चों के शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध कर सकते है। खाली पेट रहना, नंग-धडंगता, अस्वच्छता तथा बिमारियाँ इनके जीवन का अभिन्न अंग बनती है। गरिबी, अज्ञान, निर्धनता और शोषण के दुष्टचक्र में निम्नवर्ग पिसता जाता है। निम्नवर्ग को शोषण की इस भट्टी से बचाने के लिए नागार्जुन ने शिक्षा की सुविधा, श्रम की प्रतिष्ठा, अन्याय का प्रतिकार एवं अधिकारों के प्रति सजगता आदि आवश्यक सुझाव अपने उपन्यासों में दिए हैं।

नागार्जुन को आंचलिक संस्कृति के प्रति सहज लगाव होने से उन्होंने मिथिला प्रदेश का जन-जीवन, सामाजिक एवं धार्मिक परंपराएँ, अंधविश्वास, रीति-रिवाज, रहन-सहन, खान-पान आदि का सूक्ष्म एवं यथार्थ वर्णन किया है। मिथिला प्रदेश का जन-जीवन अनपढ़ता तथा आर्थिक दृष्टि से पिछडा होने से प्राचीन रीति-रिवाज प्रगति और परिवर्तन में बाधक सिध्द होते है। ऐसी अहितकारक रुढियों - अंधविश्वासों का खंडन कर प्रगतिशील विचारों का प्रचार-प्रसार कर समाज सुधार करना नागार्जुन का लक्ष्य रहा है। उन्होंने पुराने दकियानूसी रीति-रिवाजों की व्यर्थता और निरुपयोगिता पर अपने उपन्यासों के द्वारा प्रकाश डाला है। समाज की पीडा को समाज में प्रचलित बोल चाल की भाषा में व्यक्त करने में नागार्जुन की कलाकृतियाँ सफल हुआ है।

धर्म जैसे पवित्र क्षेत्र में फैले हुए स्वार्थ तथा व्यभिचारके नागार्जुन शत्रु है। स्पृश्य - अस्पृश्यता, धार्मिक बाह्याडंबर, मूर्ति-पूजा, भूत-प्रेतों में विश्वास, पशु बलि, मनौतियाँ और साधु-महंतों के विलास तथा व्यभिचार आदि को अड़े हाथों लिया है। "इमरतिया" तथा "जमनिया का बाबा" में पाखण्डी-व्यभिचारी साधु बाबा का चित्रण कर साबित किया है कि तंत्र-मंत्र, टोने-टोटके आदि से यह लोग भोले-भाले लोगों को ठगा रहे है। जमनिया का मठाधीश बेंत की फटकार लगाकर आशीर्वाद देता है, मठ में स्त्रियों का शील भंग करते है, योगिनियों से रंग-रेलियाँ करते हुए गुलछर्रे उड़ाते है। विदेशी एजेंटों के रूप में राष्ट्रविरोधी अवैध कारनामों में सहभागी होते है। इन सब की कलाई खोलते हुए "इमरतिया" में एक ऐसे आदर्श साधु अभयानंद को प्रस्तुत किया है, जो राष्ट्र-रक्षक तैयार करने का कार्य कर रहा है। नागार्जुन ने जन-कल्याण के धर्म का पक्ष लेकर धर्म के नाम पर चलनेवाले शोषण का विरोध किया है।

नागार्जुन अपने उपन्यासों से एक ऐसी वर्ग-विहीन समाज-व्यवस्था के निर्माण के लिए प्रयत्नशील हैं, जो मानव की बहुमुखी उन्नति कर सके। समाजवादी यथार्थवाद की स्थापना करने में वे आर्थिक विषमता के विरुध्द ललकार करते है, हँसिया-हथोडा वाली पार्टी का समर्थन तथा "कमाने वाला खाएगा--- इसके चलते जो कुछ हो? आदि नारे और विचार उन पर मार्क्सवादी प्रभाव सूचित करते है, पर वे मार्क्सवादी पार्टी को अंधसमर्थन नहीं देते रहे। उनकी पक्षधरता किसी दल विशेष के साथ न होकर आम आदमी के साथ है। उन्होंने पार्टीबाजी की दूषित राजनीति का सदैव बहिष्कार किया है और कभी व्यावहारिक राजनीति में भाग नहीं लिया है। वे किसी पार्टी की अपेक्षा निम्नवर्ग को अधिकार देने में सतर्क रहे है। कम्युनिस्ट पार्टीद्वारा किसान-मजदूरों के विकास का लक्ष्य रखने के कारण ही नागार्जुन ने उसे अपना समर्थन दिया है। अपने गांधीवादी आदर्शों से गिरे कॉंग्रेसी नेताओंसे नागार्जुन नाराज लगते है। उनकी राय है कि आज कॉंग्रेस किसान-मजदूरों की नही रही तो वह पूँजीपति-जमींदारों की समर्थक बन गयी है। अतः नागार्जुन ने अपने उपन्यासों मे अधिक मात्रा में कॉंग्रेसी विचारधारा का विरोध करते हुए समाजवादी और साम्यवादी विचारधारा का समर्थन किया है। पहले समाजवादी नेताओं में विश्वास होने से उन्होंने "बलचनमा" का किसान आन्दोलन समाजवादी नेताओं के नेतृत्व में लड़वाया है। बाद में उन्हें समाजवादी नेताओं की ढीली नीतियों के कारण उन से भी घृणा हो गयी। चीनी आक्रमण के बाद उन्होंने साम्यवादी दल से अपना नाता तोड़ दिया। नागार्जुन केवल उसी पार्टी को समर्थन देते रहे हैं जो गरीबों का हित - चिंतन करती है। साम्राज्यवाद और साम्प्रदायवाद का तीव्र विरोध उन्होंने किया है।

-नागार्जुन की औपन्यासिक कृतियों में निहित कई विषयोंपर शोध कार्य की संभावना है जैसे - नागार्जुन के नारी पात्र, नागार्जुन की विचारधारा, नागार्जुन के उपन्यासों में अभिव्यक्त राजनीतिक चेतना, नागार्जुन का साम्यवादी चिन्तन या नागार्जुन और मार्क्सवाद, नागार्जुन के उपन्यासों में व्यंग्य, नागार्जुन के उपन्यासों की भाषा आदि भावी शोध कार्य के विषय हो सकते हैं।

नागार्जुन के उपन्यासों में मानव भलाई के विचार ही व्यक्त हो गये है। बुराईयों को नष्ट करने के लिए सिर्फ खंडन की नीति ही नहीं अपनाई तो सुझाव भी दिये है। वे संघर्ष प्रेमी है, लेकिन उनका संघर्ष केवल जीवन के नकारात्मक पक्ष पर बल नहीं देता तो रचनात्मक पक्ष पर भी बल देता है। वे एक अत्यन्त जागरुक चिन्तक, संवेदनशील समाज-सुधारक, किसानों-मजदूरों और दलितों की पीड़ा को वाणी देने वाले महान साहित्यकार तथा शलाका पुरुष है। वे उपन्यासों के माध्यम से पिछली दुनिया में परिवर्तन कर उसे नये सिरे से संगठित और विकसित करना चाहते है।

- - - -

संदर्भ ग्रन्थ सूची

(उपन्यास, लेखक, प्रकाशन, प्रयुक्त संस्करण)

आधार ग्रंथ :

1. "रतिनाथ की चाची", - नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली। प्र.सं.1985.
2. "बलचनमा" - नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली। प्र.सं..1989.
3. "बाबा बटेसरनाथ" - नागार्जुन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली। तीसरा सं. 1989.
4. "वरुण के बेटे" - नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली। प्र. सं.1984.
5. "दुखमोचन" -नागार्जुन, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली। सं. 1981.
6. "कुम्भीपाक" - नागार्जुन, राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली। तृतीय सं. 1978.
7. "उग्रतारा" - नागार्जुन, राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली। चौथा सं. 1977.
8. "नयी पौध" - नागार्जुन, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली। प्रकाशन वर्ष 1980.
9. "जमनिया का बाबा" - नागार्जुन, किताब महल, इलाहाबाद। प्र. सं. 1968.
10. "अभिनंदन" - नागार्जुन, यात्री प्रकाशन, दिल्ली। संस्करण 1993.
11. "हीरक जयन्ती" - नागार्जुन, आत्माराम एंड संज, दिल्ली। प्र. सं.1962.
12. "इमरतिया" - नागार्जुन, राजपाल एंड संज, दिल्ली। प्र. सं.1968.
13. "पारो" - नागार्जुन, संभावना प्रकाशन, हापुड.। (श्री कुलानंद मिश्र द्वारा हिन्दी अनुवाद) प्र. स. 1975.

सहाय्यक ग्रन्थ :

(पुस्तक, लेखक, प्रकाशन, प्रयुक्त संस्करण)

1. हिन्दी उपन्यास की प्रवृतियाँ - डॉ.शशिभूषण सिंहल, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा। प्र. सं.1970
2. हिन्दी उपन्यास - डा. सुषमा धवन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली। प्र. सं.1961.
3. हिन्दी उपन्यास : तीन दशक - डॉ. राजेन्द्र प्रताप, अभिनव प्रकाशन, नई दिल्ली। प्र.सं.1983.
4. जैनेन्द्र के कथा साहित्य में चित्रित सामाजिक समस्यायें - डॉ.सुरेश गायकवाड, साहित्य रत्नाकर रामबाग - कानपुर। प्र. सं. 1991.
5. हिन्दी के आंचलिक उपन्यास - सम्पा.डा.रामदरश मिश्र / डॉ. ज्ञानचंद गुप्त, वाणी प्रकाशन, दिल्ली। प्र.सं.1984.

6. हिन्दी के बहुचर्चित उपन्यास और उपन्यासकार - डॉ. अमर जायसवाल, विद्या विहार गांधीनगर - कानपुर। प्र. सं. 1984.

7. प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना - डॉ. अमरसिंह ज. लोधा, अमर प्रकाशन, अहमदाबाद। द्वितीय सं. 1985.

8. आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में राजनैतिक एवं आर्थिक चेतना - डॉ. पीताम्बर सरोदे, अतुल प्रकाशन, कानपुर। संस्करण - जून 1987.

9. भूमिजा - नागार्जुन, सम्पादन - सोमदेव / शोभाकान्त, राधाकृष्ण प्रकाशन दरियागंज - नयी दिल्ली।

10. आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि नागार्जुन : डॉ. प्रभाकर माचवे द्वारा संपादित (जीवनी और संकलन) राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली।

11. नागार्जुन के नारी पात्र - प्रा. अर्जुन घरत, शब्द शक्ति प्रकाशन किदवई नगर - कानपुर। संस्करण 1989.

12. हिन्दी उपन्यासों में ग्रामसमस्यायें - डॉ. ज्ञान अस्थाना, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा। प्र.सं. 1979.

13. नागार्जुन - सम्पा. सुरेशचन्द्र त्यागी, आशिर प्रकाशन, सहारनपुर। सं. मार्च 1984.

14. हिन्दी उपन्यास : सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया और स्वरुप - प्रभा वर्मा, क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली। प्र. सं. 1990.

15. हिन्दी उपन्यास का उद्भव और विकास - आचार्य उमेश शास्त्री, देवनागर प्रकाशन, जयपुर। प्र.सं. 1987.

16. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास बदलते सामाजिक परिप्रेक्ष्य में - डॉ. उमेश प्रसाद सिंह, शिक्षा निकेतन, सुड़िया-वाराणसी। संस्करण 1988.

17. उपन्यासकार नागार्जुन - बाबूराम गुप्त, श्याम प्रकाशन, जयपुर। प्र.सं. 1985.

18. आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में वस्तु विन्यास - डॉ. सरोजनी त्रिपाठी, प्रका. ग्रन्थम - रामबाग कानपुर। मई 1973.

19. साहित्यिक निबंध - राजनाथ शर्मा, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा। उन्नीसवाँ संस्करण 1982

20. हिन्दी उपन्यासों में आंचलिकता की प्रवृत्ति - डा. कडवे, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपूर। प्र.सं. 1978.

21. हिन्दी उपन्यास रचना विधान और युगबोध - श्रीमती बसंती पंत, पंचशील प्रकाशन, जयपुर। प्र. सं. 1973.

22. हिन्दी साहित्य में दलित चेतना - डॉ. आनन्द वास्कर, विद्याविहार प्रकाशन, गाँधीनगर - कानपुर। प्र. सं. 1986.

23. नागार्जुन : जीवन और साहित्य - डॉ.प्रकाशचन्द्र भट्ट, सेवा सदन प्रकाशन रामपुरा, जिला मन्दसौर (म.प्र.) प्र. सं. जनवरी 1974.

24. बाबा नागार्जुन - सं. नरेन्द्र कोहली, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली। प्र.सं. 1987.

25. हिन्दी के आञ्चलिक उपन्यासों का लोकतात्विक विमर्श - डॉ.उषा डोगरा, अनुभव प्रकाशन, कानपुर। प्र. सं., जून 1984.

26. नागार्जुन का रचना संसार - विजय बहादुर सिंह, संभावना प्रकाशन हापुड। प्र.सं. 1982.

27. हिन्दी के सात उपन्यास : डॉ. सरजूप्रसाद मिश्र, अजब पुस्तकालय, कोल्हापुर। प्र.सं. नवम्बर 1977.

28. भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास - डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार, सरस्वती सदन, मसूरी। द्वि. सं. 1956.

29. "महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में बदलते सामाजिक संदर्भ - डा. शीलप्रभा वर्मा, विद्याविहार कानपुर। प्र. सं. 1987.

30. "स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य में जीवन दर्शन" - डा. सुमित्रा त्यागी, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली। प्र. सं. 1978.

31. हिन्दी के आँचलिक उपन्यास और उनकी शिल्पविधि - डॉ. आदर्श सक्सेना, सूर्यप्रकाशन मंदिर, बीकानेर। प्र. सं. 1971.

32. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम-चेतना - डॉ. ज्ञानचन्द गुप्त, अभिनव प्रकाशन, दिल्ली। प्र. सं. 1974.

33. हिन्दी उपन्यास : समाजशास्त्रीय विवेचन, - डॉ. चण्डीप्रसाद जोशी, अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर। प्र. सं. 1962.

34. स्वातंत्र्योत्तर हिंन्दी साहित्य में गाँधीवाद - डॉ. शैलबाला, हिन्दी साहित्य भण्डार, लखनऊ। प्र.स. 1977.

35. Indian Middle Classes - Dr. D.B. Mistra, Ed. 1961.

36. Studies in Class Structure - G.A. Cole, Ed. 1955.

37. Sociology Studies - Henery. A. Mess. Ed. 1942.

38. What is Culture? John. C. Paway, Ed. 1948?

कोशग्रंथ :

1. हिन्दी शब्दसागर - सम्पादक, डा. श्याम सुंदरदास, सातवाँ खण्ड
2. बृहत हिन्दी कोश - ज्ञान मंण्डल, लिमीटेड, बनारस, सं.2009.
3. भार्गव आदर्श हिन्दी शब्दकोश - संपा. रामचन्द्र पाठक, सं.1969

स्मारिका / त्रैमासिक :

1. महाराष्ट्र हिन्दी परिषद (स्मारिका) चतुर्थ अधिवेशन, औरंगाबाद दि. 29 व 30 मार्च 1993.
2. राष्ट्रवाणी (त्रैमासिक) नवम दशक हिंदी साहित्य विशेषांक, महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा, सभा, पुणे। सितंबर - अक्तूबर : दीपावली 1992.

૧૧૧